

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182560

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83/C49Kr Accession No. G.H.680

Author चहोपाध्याय, बङ्किमचंद्र ।

Title कृष्णकान्त का विरह ।

This book should be returned on or before the date last marked below.

कृष्णकान्त का विल

उपन्यास-सम्राट्
वङ्कमचन्द्र चट्टोपाध्याय

अनुवादक
श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी, निराला

प्रकाशक
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

१९४०

मल्ल ॥॥ आने

Printed and published by
K. Mittra. at The Indian Press, Ltd.,
A L L A H A B A D.

कृष्णकान्त का विल

पहला खण्ड

पहला परिच्छेद

हरिद्रा ग्राम में बड़े ज़मींदार का एक घर था। ज़मींदार बाबू कृष्णकान्त राय थे। कृष्णकान्त राय बड़े धनिक थे। उनकी ज़मींदारी का मुनाफ़ा लगभग दो लाख रुपये था। यह सम्पत्ति उनकी और उनके भाई रामकान्त राय की उपार्जित थी। दोनों भाइयों ने एक साथ मिलकर धनोपार्जन किया था। दोनों भाइयों में बड़ी प्रीति थी। किसी के मन में किसी वक्त भी सन्देह नहीं पैदा हुआ कि एक दूसरे से ठगा जायगा। ज़मींदारी केवल बड़े भाई कृष्णकान्त के नाम खरीदी गई थी। दोनों का सम्मिलित कुटुम्ब था। रामकान्त राय के एक लड़का पैदा हुआ था, उसका नाम था गोविन्दलाल। लड़का पैदा होने के वक्त रामकान्त राय के मन में यह सङ्कल्प हुआ कि दोनों की पैदा की हुई सम्पत्ति एक के नाम से है, इसलिए पुत्र के कल्याण के अर्थ उसकी समुचित लिखा-पढ़ी कर लेना कर्तव्य है। क्योंकि, जब भी उनके मन में यह निश्चय था कि कृष्णकान्त कभी उन्हें धोखा नहीं देंगे या कोई अन्यायाचरण नहीं करेंगे, फिर भी कृष्णकान्त का परलोकवास हो जाने पर उनके लड़के क्या करेंगे, इसका निश्चय नहीं। परन्तु वे लिखा-पढ़ी की बात एकाएक नहीं कह सके—आज कहेंगे, कल कहेंगे, करने लगे।

एक बार काम से ज़मींदारी गये तो वहीं अकस्मात् उनकी मृत्यु हो गई ।

अगर कृष्णकान्त ऐसा सोचते कि भतीजे को धोखा देकर कुल सम्पत्ति अकेले दखल करेंगे तो इसके लिए अब कोई दूसरा विघ्न नहीं रह गया था । परन्तु कृष्णकान्त का ऐसा असद् अभिप्राय नहीं था, वे गोविन्दलाल को अपने परिवार में अपने पुत्रों के साथ समानभाव से पालने लगे और विल करके अपनी उस उपार्जित सम्पत्ति का न्यायानुसार आधा हिस्सा जो रामकान्त राय का प्राप्य था, गोविन्दलाल को दे जाने की इच्छा की ।

कृष्णकान्त राय के दो लड़के थे और एक लड़की । बड़े लड़के का नाम हरलाल था, छोटे का विनोदलाल और लड़की का नाम शैलवती । कृष्णकान्त ने ऐसा विल (वसीयतनामा) किया कि उनके परलोकवास पर आठ आने गोविन्दलाल के, हरलाल और विनोदलाल के तीन-तीन आने, गृहिणी का एक आना और शैलवती का एक आना सम्पत्ति पर अधिकार होगा ।

हरलाल बड़ा शरारती था, पिता की बात नहीं मानता था और मुँहफट था । बङ्गाल का विल अक्सर छिपा नहीं रहता । विल की बात हरलाल को मालूम हो गई । हरलाल ने कुल संवाद प्राप्त कर क्रोध में आँखें लाल करके पिता से कहा, “यह क्या हुआ ? गोविन्दलाल को आधा हिस्सा मिला और मुझे सिर्फ़ तीन आने ?”

कृष्णकान्त ने कहा, “यही न्याय है । गोविन्दलाल के पिता का हक़ आधा हिस्सा उसे दिया गया है ।”

हरलाल ने कहा, “आपकी अक़ल मारी गई है,—आपको हम आपके इच्छानुसार काम करने नहीं देंगे ।”

कृष्णकान्त ने क्रोध में आँखें लाल करके कहा, “हरलाल अगर तुम लड़के होते तो आज पंडित जी को बुला कर हम इसकी पंचायत लगावाते ।”

हरलाल बोला “बचपन में मैंने पंडित जी की मूर्छें जला दी थीं इस वक्त यह विल भी उसी तरह जला दूँगा।”

कृष्णकान्त ने दूसरी बात नहीं कही। अपने हाथ से विल फाड़ डाला। उसके बदले एक नया विल लिखवाया जिसमें गोविन्दलाल के आठ आने रहे, विनोदलाल के पाँच आने, मालकिन का एक आना, शैलवती का एक आना और हरलाल का सिर्फ एक आना।

गुस्से में आकर हरलाल पिता का घर छोड़ कर कलकत्ता गया, वहाँ से पिता के पास एक पत्र लिखा। उसका मर्म यह है,—

“कलकत्ता के पंडितों का मत है कि विधवा-विवाह शास्त्र-सम्मत है। मैंने सोचा है कि एक विधवा-विवाह करूँगा। आप अगर विल बदल कर आठ आने लिख दें और वह विल जल्द रजिस्ट्री कर दें तो इससे बाज़ आऊँगा, नहीं तो जल्द एक विधवा-विवाह करूँगा।”

हरलाल ने सोचा था कि कृष्णकान्त डर कर विल बदल देंगे और हरलाल को अधिक सम्पत्ति लिख देंगे। परन्तु कृष्णकान्त का जो उत्तर मिला उससे उन्हें आशा नहीं रही। कृष्णकान्त ने लिखा,—

“तुम मेरे त्याज्य पुत्र हो। तुम्हारी जिस तरह इच्छा हो उस तरह विवाह कर सकते हो। मेरी जिसे इच्छा होगी उसे सम्पत्ति दूँगा। तुम यदि यह विवाह करोगे तो मैं विल बदलूँगा सही, परन्तु उससे तुम्हारा अनिष्ट के सिवा इष्ट न होगा।”

इसके कुछ ही दिन बाद हरलाल ने संवाद भेजा कि उन्होंने विधवा-विवाह किया है।

कृष्णकान्त राय ने फिर विल फाड़ डाला। नया विल करेंगे।

टेले में ब्रह्मानन्द नाम के एक सीधे स्वभाव के भले मानुस रहते थे, कृष्णकान्त को ताऊ जी कहते थे और उनकी कृपा से चार पैसे पा भी जाते थे।

ब्रह्मानन्द के हस्ताक्षर अच्छे थे। यह सब लिखा-पढ़ी उन्हीं के हाथ हुई थी। कृष्णकान्त ने उस रोज़ ब्रह्मानन्द को बुला कर कहा, “भोजन के बाद यहीं आना, नया विल लिख देना होगा।”

विनोदलाल वहीं उपस्थित था। उसने पूछा, “किस मतलब से फिर विल बदलिगा ?”

कृष्णकान्त ने कहा, “अब की तुम्हारे बड़े भाई के हिस्से में सिकर आयेगा।

विनोदलाल—यह अच्छा नहीं मालूम देता। माना कि वे अपराधी हैं, मगर उनके एक लड़का है—वह मासूम बच्चा है, उसने कोई क्रसूर नहीं किया। उसका क्या होगा ?

कृष्णकान्त—उसे एक पाई लिख देंगे।

विनोद—एक पाई हिस्से से क्या होगा ?

कृष्णकान्त—मेरी आमदनी दो लाख रुपये की है। उसकी एक पाई तीन हजार रुपये से ज्यादा होती है। इससे एक गृहस्थ का भोजन-वस्त्र अनायास चल सकता है। इससे ज्यादा नहीं दूँगा।

विनोदलाल ने बहुत समझाया परन्तु मालिक का मत किसी तरह भी नहीं बदला।

दूसरा परिच्छेद

ब्रह्मानन्द स्नान और भोजन करके सोने का उद्योग कर रहे थे ऐसे वक्त ताज्जुब में आकर देखा कि हरलाल है। हरलाल आकर सिरहाने बैठा।

ब्रह्मानन्द—यह क्या ? बड़े बाबू हैं, कब मकान आये ?

हरलाल—मकान अभी भी नहीं गये ।

ब्र०—सीधे यहीं ? कलकत्ते से कब आये ?

हर०—कलकत्ते से दो रोज़ हुए, आया हूँ । यहाँ दो दिन किसी जगह छिपा था । सुना है, फिर नया विल तैयार होगा ।

ब्र०—ऐसा ही सुन रहा हूँ ।

हर०—मेरे हिस्से में अब की सिकर आयेगा, सुना ।

ब्र०—मालिक अभी गुस्से से कर रहे हैं सही, लेकिन ऐसा रहेगा नहीं ।

हर०—आज दिन ढलते लिखा-पढ़ी होगी ? तुम लिखोगे ?

ब्र०—तो फिर और क्या करें भाई ! मालिक के कहने पर “नहीं” तो कह सकता नहीं ?”

हर०—अच्छा है, इसमें तुम्हारा क्या कसूर ? इस वक्त कोई रोज़गार करोगे ?

ब्र०—ब्रूसा और भापड़ ? अच्छा भाई, मार लो ।

हर०—यह नहीं, एक हजार रुपया ।

ब्र०—क्या विधवा से शादी करें ?

हर०—यही ।

ब्र०—उम्र हो गई है ।

हर०—तो एक दूसरा काम बतलाता हूँ, अभी शुरू कर दो, पेशगी कुछ ले लो । यह कह कर हरलाल ने ब्रह्मानन्द के हाथ में ५०० रुपये का नोट दिया ।

ब्रह्मानन्द ने नोट पाकर उलट-पलट कर देखा और कहा, “इसे लेकर मैं क्या करूँगा ?”

हर०—जमा कर रखो । १० रुपया मोती ग्वालिन को देना ।

ब्र०—ग्वालिन-वालिन से मेरा कोई ताल्लुक नहीं । लेकिन मुझे क्या करना होगा ?

हर०—दो क़लम तैयार करो, दोनों जैसी बिलकुल एक-सी हों ?

ब्र०—अच्छा भाई जैसा कहते हो, करता हूँ। यह कह कर घोष महाशय ने दो नई कलमें लेकर एक-सी काट कर तैयार कीं और लिखकर देखा कि दोनों का लिखना देखने में एक-सा होता है। तब हरलाल ने कहा, “इनमें से एक कलम बक्स के अन्दर रखो। जब विल लिखने जाना, यह कलम लेकर इसी से विल लिखना। दूसरी कलम लेकर इस वक्त एक लिखा-पढ़ी करनी होगी।

“तुम्हारे पास अच्छी स्याही है?”

ब्रह्मानन्द ने दावात निकाल कर, लेकर दिखलाया, हरलाल कहने लगा, “ठीक है, यही स्याही विल लिखने के लिए ले जाना।”

ब्र०—“तुम्हारे घर में क्या दावात-कलम नहीं कि मैं ढोकर ले जाऊँ?”

हर०—“मेरा कोई उद्देश्य है—नहीं तो तुम्हें इतना रुपया क्यों देता?”

ब्र०—मैं भी यही सोच रहा हूँ, ठीक कहा है, मेरे भाई!

हर०—तुम दावात-कलम ले जाओगे तो कोई सोचे तो सोच सकता है कि आज यह सब क्यों ले आये? तुम सरकारी स्याही और कलम को भला-बुरा कहना, तो सब सुधर जायगा।

ब्र०—सिर्फ सरकारी स्याही और कलम को क्यों? सरकार को भी भला-बुरा कह सकता हूँ।

हर०—इतनी दूर तक जरूरत नहीं। इस वक्त असली काम शुरू करो।

हरलाल ने दो जनरल लेटर कागज़ ब्रह्मानन्द के हाथ में दिया, ब्रह्मानन्द ने कहा, “यह तो सरकारी कागज़ है, देख रहा हूँ।”

“सरकारी नहीं—लेकिन वकील के मकान में लिखापढ़ी इसी कागज़ में हुआ करती है। मालिक भी इसी कागज़ से विल लिखाया

करते हैं, जानता हूँ। इसी लिए यह कागज़ मैं ले आया हूँ। जो कुछ कहता हूँ वह इसी स्याही और कलम से लिखो।”

ब्रह्मानन्द ने लिखना शुरू किया। हरलाल ने एक विल लिख दिया। उसका मर्म यह है,—कृष्णकान्त राय विल कर रहे हैं। उनके नाम से जितनी सम्पत्ति है, उसका बँटवारा कृष्णकान्त के परलोक-वास पर ऐसा होगा। जैसे—विनोदलाल तीन आने, गोविन्दलाल एक पैसा, गृहिणी एक पैसा, शैलवती एक पैसा, हरलाल का पुत्र एक पैसा, हरलाल अष्ट पुत्र है इसलिए यात्री बारह आने।

लिखना समाप्त हो जाने पर ब्रह्मानन्द ने कहा, “अब तो विल लिख गया, दस्तखत कौन करेगा?” “मैं” कह कर, हरलाल ने उस विल में कृष्णकान्त राय और चार गवाहों के दस्तखत कर दिये, ब्रह्मानन्द ने कहा अच्छा, यह तो जाली विल हुआ।”

हर०—यही सच्चा विल हुआ, दोपहर ढले जो विल लिखोगे, वही जाली होगा।

ब्र०—किस तरह ?

हर०—तुम जब विल लिखने जाओगे, तब यह विल अपने कुर्ते की जेब में छिपा ले जाना। वहाँ जाकर इसी स्याही और कलम से उनकी इच्छा के अनुसार विल लिखना। कागज़, कलम, स्याही और लिखनेवाला एक ही है; अतएव दोनों विलें देखने में एक-सी होंगी। बाद को विल पढ़ कर सुनाना और दस्तखत हो जाने पर तुम अपना दस्तखत करने के लिए लोगे। सबकी तरफ पीठ कर दस्तखत करना। इसी अवकाश में विल बदल लेना। यह विल मालिक को देकर मालिकवाली मुझे ला देना।

ब्रह्मानन्द घोष सोचने लगे। कहा “कहने से क्या है—बुद्धि का खेल तुम अच्छा खेले।”

हर०—सोचते क्या हो ?

ब्र०—इच्छा तो होती है, लेकिन डरता हूँ, अपना रुपया लौटा लो। मैं इस जाल में नहीं रहूँगा।

“रुपया दो” यह कहकर हरलाल ने हाथ फैलाया। ब्रह्मानन्द घोष ने नोट लौटाल दिया। नोट लेकर हरलाल चला जा रहा था। ब्रह्मानन्द ने तब उसे बुलाकर कहा, “क्या भैया साहब चले गये?”

नहीं, कह कर हरलाल लौटे।

ब्र०—तुमने इस वक्त पाँच सौ रुपया दिया। और क्या दोगे?

हर०—तुम वह विल लिख कर दोगे तो और पाँच सौ दूँगा।

ब्र०—बहुत रुपये हैं—लोभ छोड़ा नहीं जाता।

हर०—तो तुम राज़ी हुए?

ब्र०—राज़ी नहीं हूँगा तो क्या करूँगा? लेकिन बदलूँगा किस तरह? देख जो लेंगे?

हर०—क्यों देख लेंगे? मैं तुम्हारे सामने विल बदले लेता हूँ, तुम देखो कुछ पता चलता है?

हरलाल के दूसरी विद्या रही हो या न रही हो, हस्त-कौशल-विद्या में कुछ शिक्षा उसने प्राप्त की थी। उसने विल जेब में रक्खा और एक कागज़ हाथ में लेकर, उसमें लिखने का उपक्रम किया। इस वक्त हाथ का कागज़ जेब में और जेब का हाथ में किस तरह आया, ब्रह्मानन्द किसी तरह मालूम नहीं कर सके। ब्रह्मानन्द हरलाल के हस्त-कौशल की प्रशंसा करने लगे। हरलाल ने कहा, “यह कौशल तुम्हें सिखा दूँगा।”

यह कह कर हरलाल, वह अभ्यस्त कौशल ब्रह्मानन्द को अभ्यास कराने लगे।

दो-तीन दंड में वह कौशल ब्रह्मानन्द को भी अभ्यस्त हो गया, तब हरलाल ने कहा, “मैं अब चला। शाम को बाक़ी रुपये लेकर आऊँगा।”

यह कह कर वह बिदा हुआ ।

हरलाल के चले जाने पर ब्रह्मानन्द को बड़ा डर मालूम दिया । उन्होंने देखा कि जिस काम के लिए वे स्वीकृत हुए हैं, अदालत में उस अपराध का बहुत बड़ा दंड है—कौन कहे, भविष्य में उन्हें जिन्दगी भर के लिए सज़ा काटनी पड़े । विल बदलते समय अगर किसी ने उन्हें देख लिया ! वे ऐसा काम क्यों कर रहे हैं ? लेकिन बिना किये हाथ आया हजार रुपया छोड़ना पड़ता है । ऐसा भी नहीं किया जाता । प्राण रहते, नहीं ।

हाय फलाहार ! कितने दरिद्र ब्राह्मणों को तुमने मर्मान्तक पीड़ा दी है । इधर संक्रामक ज्वर और प्लीहा से पेट भर गया है, इस पर फलाहार सामने है ! तब काँसे के पात्र में या केले के पत्र में सुशोभित पूड़ियाँ, संदेश, बिहीदाना, सीताभोग आदि की अमल-धवल शोभा देखकर दरिद्र ब्राह्मण क्या करेगा ? छोड़ेगा या भोजन करेगा ? मैं शपथ करके कह सकता हूँ कि ब्राह्मण देवता यदि सहस्रों वर्षों तक उस सज्जित पात्र के पास बैठे हुए तर्क-वितर्क करें, तो भी वे इस कूट प्रश्न की मीमांसा नहीं कर सकते—और मीमांसा न कर सकने के कारण अनमने होकर दूसरे का द्रव्य अपने पेट में डालेंगे ।

ब्रह्मानन्द घोष महाशय ने ऐसा ही किया । हरलाल का यह रुपया हज़म करना कठिन है,—जेल का भय है; लेकिन छोड़ा भी तो नहीं जाता । बड़ा लाभ है, किन्तु बदहज़मी का डर भी बहुत ज्यादा है ! ब्रह्मानन्द कोई सिद्धान्त नहीं कर सके । सिद्धान्त न कर सकने के कारण, दरिद्र ब्राह्मण की तरह उन्होंने पेट में डालने की तरफ़ ही मन रक्खा ।

तीसरा परिच्छेद

शाम के बाद ब्रह्मानन्द विल लेकर लौट आये । देखा कि हरलाल घर में बैठा है । हरलाल ने पूछा, “क्या हुआ !”

ब्रह्मानन्द कविताप्रिय हैं । उन्होंने मुश्किल से हँसी रोक कर कहा,—

दिल में आता है बड़ा कर हाथ पकड़ूँ चन्द्रमा,
“किन्तु काँटों में बूँदों के अँगुलियाँ छिद गईं ।”

हरलाल—क्या काम नहीं कर सके ?

ब्रह्मानन्द—भाई, दिल में बड़ी रुकावट आ रही थी ।

हर०—तो नहीं कर सके ?

ब्र०—नहीं भाई—यह लो अपना जाली विल । यह लो अपना रुपया ।

यह कह कर ब्रह्मानन्द ने कृत्रिम विल और संदूक से पाँच सौ रुपये का नोट निकाल कर दिया । क्रोध और विरक्ति से हरलाल की आँखें लाल हो गईं और होंठ काँपने लगे । कहा, “मूर्ख, नालायक, एक औरत का काम भी तुमसे नहीं हो सका ? मैं जाता हूँ । लेकिन देखना अगर तुमसे इस बात की भाप भी बाहर निकली तो तुम्हारी जान खतरे में है ।”

ब्रह्मानन्द ने कहा, “यह चिन्ता न करना । बात मुझसे नहीं खुलेगी ।”

वहाँ से उठ कर हरलाल ब्रह्मानन्द की रसोई में गया, हरलाल घर का लड़का है, सब जगह आ-जा सकता है । रसोई में ब्रह्मानन्द की भतीजी रोहिणी भोजन पका रही थी । इस रोहिणी से हमारा विशेष प्रयोजन है, इसलिए उसके रूप और गुण की कुछ बातें कहनी पड़ेंगी, लेकिन आजकल रूप की वर्णना का बाजार गिरा हुआ है और गुण की वर्णना हाल के कानून से अपने सिवा

दूसरे को करना नहीं चाहता । लेकिन इतना कहना पड़ेगा कि रोहिणी की भरी जवानी थी, रूप छलक रहा था, शरद का चाँद सोलहों कलाओं से पूर्ण था । वह थोड़ी उम्र में विधवा हो गई थी । वैधव्य में न चलनेवाले कुछ दोष उसके थे । वह काली किनारे की साड़ी पहनती थी । हाथ में चूड़ियाँ पहनती थी और शायद पान भी खाती थी । इधर भोजन पकाने में वह दूसरी द्रौपदी थी, कह सकता हूँ । रसेदार, भोर, खटाई, सूखा, दाल, भुर्ता आदि आदि पकाने में सिद्धहस्त थी; साथ ही चित्रकारी, कथे के गहने, फूल के खिलौने और सुई के काम में बेजोड़ थी । बाल बाँधने और लड़कियों को पहनाने-ओढ़ाने में टोले का एक मात्र सहारा थी । उसका कोई दूसरा सहायक नहीं था इसलिए वह ब्रह्मानन्द के घर रहती थी ।

रूपवती रोहिणी दालवाली बटलोई में चम्मच ठनका रही थी, दूर एक बिल्ली अगला पंजा बढ़ाये हुए बैठी थी, पशु रमणियों के विग्रहाम कटाक्ष से सिहर उठते हैं या नहीं, यह देखने के लिए रोहिणी उस पर रह रह कर विपपूर्ण मधुर कटाक्ष कर रही थी; बिल्ली उस मधुर कटाक्ष से भुनी हुई मछली का टुकड़ा पाने का नेवता समझ कर थोड़ा थोड़ा करके आगे बढ़ रही थी, ऐसे वक्त हरलाल बाबू जूता मचमचाते हुए घर के भीतर गये, बिल्ली डर कर भुनी मछली के टुकड़े का लोभ छोड़ कर भागने को हुई; रोहिणी दालवाला चम्मच डाल कर हाथ धोकर, सर का कपड़ा सम्हाल कर खड़ी हो गई । नाखून से नाखून खींच कर पूछा, “बड़े काका, कब आये ?”

हरलाल ने कहा, “कल आया हूँ । तुम्हारे साथ एक बात है ।”

रोहिणी काँपी; पूछा, “क्या आज यहीं भोजन कीजिएगा ? बारीक चावल चढ़ा दूँ ?”

हर०—चढ़ाना हो, चढ़ाओ; लेकिन बात यह नहीं । तुम्हें एक रोज़ की बात याद आती है ?

रोहिणी चुपचाप पृथ्वी की तरफ़ देखती रही । हरलाल ने कहा, “उसी दिन, जिस दिन तुम गंगा नहाकर आते हुए यात्रियों के साथ से पीछे पड़ रही थीं, याद है ?

रो०—(बायें हाथ की चार अँगुलियाँ दायें हाथ से पकड़ कर सर झुकाये हुए) याद है ।

हर०—जिस रोज़ तुम रास्ता भूल कर बीच मैदान में पड़ी थीं, याद है ?

रो०—है ।

हर०—जिस दिन मैदान में तुम्हें रात हो गई थी, तुम अकेली थीं—कुछ बदमाशों ने तुम्हारा पीछा पकड़ा था—याद है ?

रो०—है

हर०—उस दिन किसने तुम्हें बचाया था ?

रो०—तुमने । घोड़े पर चढ़ कर उस मैदान से तुम कहीं जा रहे थे—

हर०—साली के यहाँ ।

रो०—तुमने देखकर मुझे बचाया था—मुझे पालकी से घर भेज दिया था । याद क्यों नहीं है ! वह ऋण मैं कभी चुका नहीं पाऊँगी ।

हर०—आज वह ऋण चुका सकती हो, इसके साथ ही मुझे जन्म भर के लिए खरीद सकती हो, खरीदोगी ?

रो०—क्या कहते हो, मैं जान देकर भी तुम्हारा उपकार करूँगी ।

हर०—करो या न करो, यह सब किसी से कहना नहीं ।

रो०—जान रहते नहीं कह सकती ।

हर०—कसम खाओ ।

रोहिणी ने कसम खाई । तब हरलाल ने कृष्णकान्त के असली विल और जाली विल की बात समझा कर कही । अंत में

कहा, “वह असली विल चुरा कर जाली विल उसकी जगह रख आना होगा। हमारे मकान में तुम आती-जाती हो, तुम बुद्धिमती हो, तुम अनायास कर सकती हो। मेरे लिए यह करोगी ?”

रोहिणी काँपी। कहा, “चोरी ? मुझे काट डालने पर भी नहीं कर सकूंगी।”

हर०—स्त्री ऐसी ही असार है, सिरु^१ बातों की राशि है। क्या यही इस जन्म के लिए तुम मेरा ऋण चुका नहीं सकती ?

रो०—और जो कुछ कहें, सब कुछ कर सकती हूँ। मरने को कहें मर सकती हूँ; किन्तु यह विश्वासघात का काम नहीं कर सकती।

हरलाल किसी तरह रोहिणी को सहमत न कर सकने पर हजार रुपये के नोट रोहिणी के हाथ में देने को चले। कहा, यह हजार रुपया पेशगी इनाम लो। यह काम तुम्हें करना होगा।”

रोहिणी ने नोट न लिया। कहा, “रुपया की आशा नहीं करती। मालिक की कुल जायदाद देने पर भी नहीं कर सकती। करने को होता तो आपकी बात से ही करती।”

हरलाल ने लम्बी साँस छोड़ी; कहा, “मैंने सोचा था, रोहिणी तुम मेरा भला चाहती हो। लेकिन दूसरे अपने नहीं होते। देखो, अगर आज मेरी स्त्री रहती तो मैं तुम्हारी खुशामद न करता। वही मेरा यह काम कर देती।”

अब की रोहिणी मुसकराई। हरलाल ने पूछा, “मुसकराई क्यों ?”

रो०—आपकी स्त्री के नाम से वह विधवा-विवाहवाली बात याद आई। सुना, आपने विधवा-विवाह किया है ?

हर०—इच्छा तो है—लेकिन मन जैसा चाहता है वैसी विधवा मिलती कहाँ है ?

रो०—खैर विधवा ही हो और सोहागिन ही हो—कहती हूँ, विधवा-विवाह ही हो, कुमारी ही हो,—एक विवाह कर संसारी होना अच्छा

है। हम लोग आत्मीय स्वजन हैं, सभी को इससे आनन्द होगा; होता है।

हर०—देखो रोहिणी, विधवा-विवाह शास्त्र-सम्मत है।

रो०—हाँ, इस वक्त लोग ऐसा कहते तो हैं।

हर०—देखो, तुम भी एक विवाह कर सकती हो, क्यों नहीं कर सकतीं ?

रोहिणी ने सर का कपड़ा कुछ खींच कर मुँह फेर लिया। हरलाल कहने लगे, “देखो तुम्हारा हमारा सिक्र गाँव का रिश्ता है, सब्बी सगाई में रुकावट नहीं।”

इस दफा रोहिणी ने और लम्बा घूँघट काढ़ा और चूल्हे के करीब बैठकर दाल में चम्मच डालने लगी।

देखकर हताश होकर हरलाल लौट गया। हरलाल दरवाजे तक गया तो रोहिणी ने कहा, “न हो, कागज रख जाइए; देखूँ क्या कर सकती हूँ।”

हरलाल प्रसन्न हुआ, जाली विल और नोट रोहिणी के पास रख दिया। देखकर रोहिणी ने कहा, “नोट नहीं, सिक्र विल रख जाइए।”
हरलाल तब जाली विल रख कर नोट ले गया।

चौथा परिच्छेद

उस दिन रात आठ बजे कृष्णकान्त राय अपने सोनेवाले कमरे में पलंग पर बैठे हुए, तकिया से पीठ लगाकर सटक से तम्बाकू पी रहे थे और संसार की एकमात्र दवा—मादक द्रव्यों में श्रेष्ठ

अहिफेन उर्फ अफीम के नशे में मधुर मधुर पीनक ले रहे थे। पीनक के खयाल में देख रहे थे, जैसे विल एकाएक विक्री—कबाला हो गई है। जैसे हरलाल ने तीन रुपये तेरह आने दो कौड़ी कीमत में उनकी कुल सम्पत्ति खरीद ली है। फिर जैसे किसी ने कह दिया, “नहीं यह दान-पत्र नहीं, तमस्सुक है।”

उसी वक्त जैसे देखा कि ब्रह्मा के बेटा विष्णु आये और बोले कि सबेरे महादेव से डिविया भर अफीम कर्ज लेकर यह तमस्सुक लिखाकर विश्वब्रह्मांड रहन रख दिया—महादेव गाँजे के नशे में फोरक्लोज करना भूल गये। ऐसे समय रोहिणी धीरे-धीरे उस कमरे में जाकर बोली, “दादा, क्या सो गये?”

कृष्णकान्त पीनक लेते लेते बोले, “कौन है नन्दी? महादेव बाबा को इस वक्त फोरक्लोज करने के लिए कहो।”

रोहिणी समझी कि कृष्णकान्त पर अफीम सवार है। हँस कर पूछा, “दादा, नन्दी कौन है?”

कृष्णकान्त ने बिना गरदन उठाये कहा, “हूँ, ठीक कहा! वृन्दावन के ग्वालों के यहाँ मक्खन खाया है—आज तक उसकी एक कौड़ी नहीं दी।”

रोहिणी खिलखिलाकर हँस पड़ी। तब कृष्णकान्त जगे, सर उठा कर देखा, पूछा, “कौन है, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी?”

रोहिणी ने जवाब दिया, “मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य।”

कृष्ण०—अश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी।

रो०—दादा! मैं क्या तुम्हारे पास ज्योतिष सीखने आई हूँ?

कृष्ण०—ठीक तो! तो क्या सोच कर? अफीम तो नहीं चाहिए?

रो०—जो जान रहते नहीं दे सकेंगे, उसके लिए मैं आई हूँ? मुझे काका साहब ने भेजा है, इसलिए आई हूँ।

कृष्ण०—यह—यह! तो अफीम के लिए ही!

रो०—नहीं दादा, नहीं। तुम्हारी कसम, अक़ीम नहीं चाहिए। काका साहब ने कहा है कि जिस विल की आज लिखा-पढ़ी हुई है, उसमें तुम्हारे दस्तख़त नहीं हुए।

कृष्ण०—वह क्या? मुझे ख़ूब याद है कि मैंने दस्तख़त किये हैं।

रो०—नहीं, काका ने कहा है कि उन्हें जैसा याद है कि उसमें आपके दस्तख़त नहीं हुए, लेकिन संदेह रखने की ज़रूरत क्या है? पहले क्यों उसे निकाल कर एक दफ़ा देख नहीं लेते?

कृष्ण०—ठीक तो है—जरा दिया दिखाओ तो सही।

यह कह कर कृष्णकान्त ने उठ कर तकिये के नीचे से एक कुंजी ली। रोहिणी ने पास का दिया हाथ में लिया, कृष्णकान्त ने पहले संदूक़ची खोल उससे विचित्र प्रकार की कुंजी ली, बाद को संदूक़ची की एक दराज़ खोली और खोज कर उससे विल निकाला। बाद को संदूक़ची से चश्मा निकाल कर नाक पर रखने लगे। चश्मा लगाते लगाते दो-चार दफ़े अक़ीम की पीनकें आई—इसलिए चश्मा लगाने में कुछ देर हुई। बाद को चश्मा लग जाने पर कृष्णकान्त ने नीची निगाह करके देखा और हँस कर कहा, “रोहिणी! क्या मैं बुढ़ा होकर विह्वल हो गया हूँ? यह देख, मेरे दस्तख़त हैं?”

रोहिणी ने कहा, “बुढ़े क्यों हो गये? हमें सिर्फ़ जबरन नातिन कहते हो इसके सिवा और क्या है? लेकिन अच्छा, अब मैं जाती हूँ, काका से जाकर कहती हूँ।”

रोहिणी जब कृष्णकान्त के शयन-मन्दिर से बाहर निकली !!! गहरी आधी रात में कृष्णकान्त सो रहे थे, एकाएक उनकी नींद टूटी। नींद टूटने पर उन्होंने देखा कि उनके शयन-गृह का दिया नहीं जल रहा है। प्रायः रात भर दिया जलता था; लेकिन उस रात को दिया गुल हो गया है, देखा। नींद टूटने पर ऐसा भी शब्द उनके कान में गया किसी ने जीभ घुमाई। ऐसा भी मालूम दिया कि जैसे घर में

कोई आदमी टहल रहा हो। आदमी उनके पलँग के सिरहाने तक आया,—उनके तकिये में हाथ लगाया। कृष्णकान्त अफीम के नशे में चूर थे; न सोते थे, न जागते थे, बहुत कुछ समझ नहीं सके। कमरे में प्रकाश नहीं—यह भी अच्छी तरह नहीं समझे, कभी अध-सोये,—कभी अध-सचेत,—सचेत होने पर भी आँखें नहीं खुलतीं। एक दफा दैवयोग से आँखें खुलने पर कुछ कुछ अँधेरा मालूम दिया सही, लेकिन कृष्णकान्त उस वक्त सोच रहे थे कि वे हरी घोष के मुकदमे में जाली तमस्सुक दाखिल करने की वजह से जेल गये हैं। जेलखाने में गहरा अँधेरा है। कुछ देर बाद एकाएक जैसे ताला खुलने की आवाज़ कुछ कुछ उनके कान में गई। यह क्या जेलखाने का ताला बन्द हुआ ? एकाएक कुछ चौंके ! कृष्णकान्त ने सटक के लिए हाथ बढ़ाया, नहीं पाया—अभ्यासवश पुकारा, “हरिया !”

कृष्णकान्त अन्तःपुर में नहीं सोते थे, दीवानखाने में भी नहीं सोते थे। दोनों के बीच में एक कमरा था; उसी में सोते थे। वहीं हरिया नाम का एक खानसामा पहरेदार के तौर पर लेटता था। और कोई नहीं। कृष्णकान्त ने उसे ही आवाज़ दी, “हरिया, हरिया !”

कृष्णकान्त सिर्फ एक बार हरिया को पुकार कर फिर अफीम की पीनक लेने लगे। असली विल उनके घर से उसी अवसर पर निकल गया। जाली विल उसकी जगह रख दिया गया।

पाँचवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन सुबह रोहिणी फिर खाना पकाने बैठी, फिर वहीं हरलाल भाँकने लगा। भाग्यवश ब्रह्मानन्द मकान में नहीं थे, नहीं तो कुछ और सोचते।

हरलाल धीरे धीरे रोहिणी के पास गया—रोहिणी ने बहुत एक फिर कर नहीं देखा। हरलाल ने कहा, “आँखें उठा कर देखो, हंडी फट नहीं जायगी।”

रोहिणी देखकर मुसकराई। हरलाल ने कहा, “तुमने क्या किया?”

चुराया हुआ विल ले आकर रोहिणी ने हरलाल को दिया। हरलाल ने पढ़ कर देखा—असली विल ही है। तब उस दुष्ट के होठों में मुस्कराहट नहीं समाई। विल हाथ में लेते हुए पूछा, “किस तरह ले आई?”

रोहिणी ने वह कहानी शुरू की, लेकिन सही सही कुछ नहीं कहा। एक झूठा उपन्यास कहने लगी—कहते कहते हरलाल के हाथ से विल लेकर उसने दिखाया कि किस तरह विल एक कलमदान के भीतर पड़ा था। विल चुराने की बात खत्म होने पर रोहिणी एकाएक विल लिये हुए वहाँ से चली गई। जब लौट कर आई तब विल उसके हाथ में नहीं था, देखकर हरलाल ने पूछा, “विल कहाँ रख आई?”

रोहिणी—ठिकाने से रख आई हूँ।

हर०—अब ठिकाने से रख कर क्या होगा? मैं अभी जाऊँगा।

रो०—अभी जाओगे? इतनी जल्दी क्यों?

हर०—मेरे रहने की गुंजाइश नहीं।

रो०—अच्छा जाओ।

हर०—विल?

रो०—मेरे पास रहेगा।

हर०—वह क्या! विल मुझे नहीं दोगी?

रो०—तुम्हारे पास रहना जैसा है, मेरे पास रहना भी वैसा ही है।

हर०—अगर विल मुझे नहीं दोगी, तो चुराया क्यों?

रो०—आप ही के लिए यह रहा। जब आप विधवा-विवाह करेंगे आपकी स्त्री को दूँगी। आप लेकर फाड़ डालेंगे।

हरलाल समझे। कहा, “ऐसा नहीं होगा—रोहिणी, रुपया जितना चाहो, दूँगा।”

रो०—लाख रुपया देने पर भी नहीं। जो कुछ देने के लिए कहा था वही चाहिए।

हर०—वह नहीं होगा। मैं जाल करता हूँ, अपने ही हक के लिए। तुमने चोरी की, किसके हक के लिए?

रोहिणी का मुँह सूख गया। वह सर मुकाये बैठी रही, हरलाल कहने लगे, “मैं जो कुछ भी होऊँ—कृष्णकान्त का पुत्र हूँ, जिसने चोरी की है उसे मैं कभी अपनी गृहिणी नहीं बना सकता हूँ।”

रोहिणी एकाएक खड़ी होकर सर की धोती चढ़ाकर हरलाल के मुँह की तरफ देखने लगी; कहा, “मैं चोर हूँ और तुम साधु हो! किसने मुझसे चोरी करने के लिए कहा था? किसने मुझे बड़ा लोभ दिखाया था? सरल स्त्री जान कर किसने धोखा दिया था? जिस शठता से बड़ी शठता नहीं, जिस बड़ी भूट से बड़ी भूट नहीं, जो इतर बर्बर भी ज़बान पर ला नहीं सकता, तुमने कृष्णकान्त राय के पुत्र होकर वही काम किया! हाय! हाय!! मैं तुम्हारे अयोग्य हूँ? तुम्हारे जैसे नीच, शठ को ग्रहण करे, ऐसी अभागी कोई नहीं। तुम अगर आज औरत होते, तो तुम्हें आज, जिससे घर बुहारती हूँ वही दिखाती। तुम पुरुष हो अपने मान के साथ दूर हो जाओ!”

हरलाल समझा, यथोचित प्रसाद मिला है। अपने मान के साथ बिदा हो गया। जाने के समय होंठ काट कर मुसकराता गया। रोहिणी भी समझी, ठीक ठीक प्रसाद मिला है,—दोनों तरफ से। वह भी जूड़ा कुछ कस कर भोजन पकाने बैठी। गुस्से में जूड़ा खुल गया था। उसकी आँखों में आँसू आ रहे थे।

छठा परिच्छेद

तुम वसंत की कोयल जी भरकर कूकती हो, इस पर मुझे कुछ भी एतराज नहीं, लेकिन तुमसे मेरी आरजू है कि समय समझ कर कूको। समय में, असमय में, सब समय में कूकना अच्छा नहीं। देखो, बड़ी तलाश के बाद कलम-दावात वगैरह नज़र आये हैं, और भी अधिक खोज के बाद मुझे अपना मन मिला है, कृष्णकान्त के विल की बातें गढ़ गढ़ कर लिखने बैठा ही हूँ कि तुम आसमान से कूकीं,—“कूऊ ! कूऊ !! कूऊ !!!”

तुम सुकंठ हो, मैं मानता हूँ, किन्तु सुकंठ होने के कारण जब-तब किसी को कूकने का अधिकार नहीं। मेरे केश पलित हैं, कलम चलित है, इन सब स्थानों में तुम्हारे कूकने से बहुत कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। परन्तु देखो, जब नये बाबू रुपये की ताड़ना में उलझे हुए, जमा-खर्च के पीछे सर मार रहे हों, तब तुम कहीं आफिस की चहारदीवारी के पास से पुकार उठीं, “कूऊ”—बाबू का फिर जमा-खर्च नहीं मिला। जब विरह-संतप्ता सुन्दरी प्रायः सारे दिन के बाद अर्थात् ९ बजे दो दाने पेट में डालने के लिए बैठी, खीर का कटोरा उठाया है कि तुम पुकार उठीं—“कूऊ” सुन्दरी का खीरवाला कटोरा ज्यों का त्यों रह गया—या अनमनी होकर उसमें नमक मिलाकर खाने लगी। कुछ हो, तुम्हारे कूकने में जादू है, नहीं तो, जब तुम मौलसिरी के पेड़ पर बैठी कूक रही थीं—और विधवा रोहिणी बाहों से कलशी लिये हुए पानी लेने जा रही थी—तब—लेकिन पहले पानी लेने के लिए जानेवाला परिचय दूँ।

अच्छा, तो बात यह है। ब्रह्मानन्द घोष दुखी आदमी—महरा, महरा नहीं लगाये हुए। यह सुभीते की बात हो या दिक्कत की, यह मैं नहीं कह सकता। सुभीता हो, दिक्कत हो, जिसके नौकरानी

नहीं, उसके घर में अधिक भूठी खबरें, तकरार और गंदगी, ये बातें नहीं। नौकरानी के नाम से देवता इन बातों की सृष्टि करते हैं। खास तौर से जिनके बहुत-सी नौकरानियाँ हों, उनके घर में रोज़ महाभारत मचा रहता है,—रोज़ रावण-वध हुआ करता है। कोई नौकरानी भीमरूपिणी है, सदा भाडूरूपी गदा हाथ में लिये घर के रणक्षेत्र में घूमती रहती है। कोई दूसरी नौकरानी उसका प्रतिभट राजा दुर्योधन है, कोई भीष्म, द्रोण और कर्ण जैसे वीरों को भला-बुरा कह रही है, कोई कुम्भकर्णरूपिणी है, छः महीने सोती है; आँखें खुलने पर सब कुछ खा जाती है; कोई सुग्रीव है, गर्दन हिलाती हुई कुम्भकर्ण के वध का उद्योग कर रही है। आदि आदि।

ब्रह्मानन्द के यहाँ ऐसी बला नहीं थी, इसलिए पानी लाना, टहल करना रोहिणी पर था। दिन के पिछले पहर, दूसरे काम खतम होने पर रोहिणी पानी लेने जाती थी। जिस दिन की घटना लिख रहा हूँ उसक दूसरे दिन नियमित समय पर रोहिणी बगल में घड़ा दबाये हुए पानी लेने जा रही थी। बाबुओं का एक बड़ा तालाब है—नाम है वारूणी—उसका पानी बड़ा मीठा है—रोहिणी वहीं पानी भरने जाती थी। आज वह जा रही थी। रोहिणी अकेली पानी लेने जाती है; जत्थे में हलकी हलकी औरतों के साथ, हलकी मुसकराहट छोड़ते हुए, हलकी गगरियों में हलका पानी लेने जाने का रोहिणी का अभ्यास नहीं।

रोहिणी की कलशी भारी है, चाल-चलन भी भारी है। लेकिन रोहिणी विधवा है। फिर भी विधवा का जैसा कोई ढर्रा नहीं। हाँठों में पान रचा हुआ, हाथों में कंगन, फीते की किनारीवाली साड़ी पहने, और कंधे पर सुन्दर रूप से गुँथी हुई, काली नागिन जैसी बल खाती हुई मनोमोहिनी बेणी। पीतल का घड़ा बगल में; भूमती हुई चाल के साथ साथ धीरे धीरे वह कलशी भी नाच रही है—जैसे तरंग तरंग

पर हँसी नाचती हो, उसी तरह बदन झुमाती हुई कलशी नाच रही है। दोनों पैर पेड़ से गिरे हुए फूल की तरह पृथ्वी पर मृदु मृदु पड़ रहे हैं—साथ ही वह रोज़ की कलशी ताल ताल पर नाच रही है। हिलती, झूलती, भरे पाल के जहाज़ की तरह ठुमकती, चौकती, चमकती रोहिणी सुन्दरी सरोवर को प्रकाशित करती हुई पानी भरने आ रही है—ऐसे समय वकुल की डाल पर बैठी वसंत की कोयल कूक उठी—

“कूऊ ! कूऊ !! कूऊ !!!”

रोहिणी ने आँखें उठाकर चारों तरफ़ देखा। मैं कसम खाकर कह सकता हूँ, रोहिणी का वह ऊँचा चढ़ा हुआ काँपता विलोल कटाक्ष डाल पर बैठी अगर वह कोयल देख पाती तो उसी वक़्त वह नाचोच्च चिड़िया तीर से बिंध कर; उलटती हुई, दोनों पंजे समेट कर धम से ज़मीन पर आ जाती। लेकिन चिड़िया की किसमत में ऐसा नहीं था। कार्य और कारण की अनन्त परम्परा में यह गाँठ नहीं बँधी थी—या चिड़िया के पूर्व जन्मार्जित सुकृत इतने नहीं थे। मूख चिड़िया फिर कूकी—“कूऊ ! कूऊ !! कूऊ !!!”

“दूर हो, कलमुँही !” कहती हुई रोहिणी चली गई। चली गई, मगर कोयल को नहीं भूली। हमें दृढ़ विश्वास है कि कोयल असमय में कूकी थी, गरीब विधवा युवती अकेली पानी लेने जा रही थी, उस समय कूकना अच्छा नहीं हुआ। क्योंकि कोयल की कूक सुनने पर बहुत-सी बुरी बुरी बातें याद आती हैं। न जाने क्या मैंने खो दिया है ? जैसा उसके खो जाने से जिन्दगी का सब कुछ असार हो गया है। जैसे अब उसे नहीं पाऊँ। जैसे न जाने क्या है, जो नहीं हुआ; न जाने क्या है, जो नहीं मिलेगा; न जाने कहाँ मैंने रत्न खो दिया है, कोई जैसे रोने के लिए पुकार रहा है, जैसे यह जोवन व्यर्थ ही बीता, सुख की एकमात्र चाह पूरी नहीं

हुई। जैसे इस संसार में आनन्द सौन्दर्य का कुछ भी भोग नहीं किया।

फिर कूऊ, कूऊ, कूऊ! रोहिणी ने आँखें उठा कर देखा— निर्मल नील अनन्त गगन है, निःशब्द है अथच उस कूक के स्वर से बँधा हुआ है। देखा, आमों में नये बौर आये हैं, सोने का रंग है, स्तर के स्तर श्यामल पत्र मिले हुए, शीतल सुगन्ध से परिपूर्ण हैं, काली मधुमक्खियों और भौरों की गुंजार है साथ ही वह उस कुहू स्वर के साथ बँधी हुई है। देखो, सरोवर के किनारे गोविन्दलाल की फुलवाड़ी है, उसमें फूल खिले हैं दल के दल, लाखों लाख, गुच्छे-गुच्छे में, शाखा-शाखा में, पत्ते-पत्ते में, जहाँ-तहाँ फूल खिले हैं; कोई सफेद, कोई लाल, कोई पीला, कोई नीला, कोई छोटा, कोई बड़ा, कहीं मधुमक्खियाँ, कहीं भौरें उस कुहू-रव के साथ एक ही स्वर में बँधे हुए। हवा के साथ उनकी खुशबू आ रही है। उसी पंचम स्वर में बँधे हुए। और उस कुसुमित कुंज की छाँह में गोविन्दलाल स्वयं खड़े हुए हैं। उनके बहुत घने, काले, घुँघराले बाल चम्पों की राशि से निर्मित, उनके कंधों पर चक्राकार पड़े हुए हैं, कुसुमित वृक्ष से अधिक सुन्दर, उस उन्नत देह पर एक खिली हुई लता की शाखा आकर भूम रही है—क्या स्वर मिला! यह भी उस कुहू-रव के साथ पंचम में बँधा हुआ है। कोयल फिर एक अशोक के ऊपर से कूकी, “कू।” उस समय रोहिणी सरोवर की सीढ़ियों से उतर रही थी। सीढ़ियाँ उतरकर गढ़ा पानी में बहाकर रोहिणी रोने के लिए बैठी।

क्यों रोने के लिए बैठी, यह मैं नहीं जानता, मैं स्त्री के मन की बात किस तरह कह सकता हूँ? लेकिन मुझे बड़ा संदेह होता है, उस दुष्ट कोयल ने रोहिणी को रुलाया है।

सातवाँ परिच्छेद

वारुणी पुष्करिणी को लेकर मैं ज़हमत में पड़ा। मैं उसका वर्णन नहीं कर पा रहा। पुष्करिणी बहुत बड़ी है। नीले काँच के आइने की तरह घास के फ़्रेम में कसी हुई है, उस घास के फ़्रेम के बाद एक और फ़्रेम है—बगीचे का फ़्रेम—पुष्करिणी के चारों तरफ़ बाबुओं का बगीचा है। बगीचे के पेड़ और चहारदीवार जैसे ख़त्म नहीं होना चाहते। वह फ़्रेम बहुत ही भड़कीला है। लाल, काला, सन्ज, गुलाबी, सफ़ेद, ज़र्द तरह तरह के फूलों की नक्काशी। तरह तरह के फूलों के पत्थर जड़े। जगह जगह सफ़ेद बैठकखाने; हर एक खाना बड़े बड़े हीरे की तरह अस्तंगामी सूर्य की किरणों से चमक रहे हैं। और सर पर आकाश—वह भी बगीचे के फ़्रेम में कसा हुआ, वह नीला आइना। और वह नीला आकाश, और वह बगीचे का फ़्रेम, और वह घासवाला फ़्रेम, फल, फूल, पेड़, मकान सब उसी नीले जल के तालाब में प्रतिबिम्बित हो रहे हैं। बीच बीच में वही कोयल पुकार रही है। यह सब एक तरह समझाये जा सकते हैं, परन्तु वह आकाश और वह तालाब, और उस कोयल की कूक के साथ रोहिणी के मन का क्या सम्बन्ध है, यह मैं नहीं समझ पा रहा। इसी लिए मैं कह रहा था कि इस वारुणी पुष्करिणी को लेकर मैं बड़ी ज़हमत में पड़ा।

मैं भी ज़हमत में पड़ा और गोविन्दलाल भी बड़े ज़हमत में पड़े। गोविन्दलाल भी उस कुसुमिता लता के अन्तराल को देख रहे थे कि रोहिणी आकर घाट की सीढ़ियों पर अकेली बैठी रो रही है। गोविन्दलाल बाबू ने मन ही मन सिद्धान्त किया, टोले में किसी लड़की के साथ तकरार करके आकर रो रही है। हम गोविन्दलाल के सिद्धान्त पर उतना निर्भर नहीं करते। रोहिणी रोने लगी।

रोहिणी क्या सोच रही थी, हम कह नहीं सकते । परन्तु जान पड़ता है, सोच रही थी, किस अपराध से यह बाल-वैधव्य मेरे अदृष्ट में घटित हुआ ? मैंने दूसरी से बढ़ कर ऐसा कौन-सा गुरुतर अपराध किया है कि मैं इस पृथिवी पर कोई भी सुख-भोग न कर पाई ? किस अपराध से मुझे इस रूप-यौवन के रहते केवल सूखी लकड़ी की तरह यह जीवन पार करना पड़ा ? जो इस जीवन के सब सुखों से सुखी हैं । सोचो, गोविन्दलाल बाबू की स्त्री, वे मुझसे किस गुण में अधिक गुणवती हैं ? किस पुण्य-फल से उनके भाग्य में यह फल आया ? मेरे भाग्य में सिफर ? लेकिन, दूर हो यह सब, दूसरे का सुख देखकर मैं व्याकुल नहीं, लेकिन मेरे कुल रास्ते बन्द क्यों हैं ? मैं यह सुख रहते जीवन रख कर क्या करूँ ?

अच्छा तो, हम कह चुके, रोहिणी स्वभाव की अच्छी नहीं । देखो, इन इतने-सी में कितनी हिंसा है । रोहिणी में बहुत-से दोष हैं । उसका रोना देखकर क्या रोने की इच्छा होती है । नहीं होती । परन्तु इतने विचार की जरूरत नहीं । दूसरे का रोना देखकर रोना ही अच्छा है । देवता के मेघ काँटों का खेत देख कर बारिश रोकते नहीं । अच्छा तो तुम लोग रोहिणी के लिए एक दफा अहा कहो । देखो, अब भी रोहिणी घाट में बैठी सर पर हाथ रखे रो रही है । खाली घड़ा पानी पर हवा में नाच रहा है ।

अंततः सूर्य डूबा । क्रमशः सरोवर के नीले पानी पर काली छाया पड़ी । अन्त में अंधकार हो आया । चिड़ियाँ सब उड़ उड़-कर पेड़ों पर बैठने लगीं, फिर चोसले की तरफ लौटीं । गायें घर लौटीं । तब चाँद उगा । अंधेरे पर मधुर चाँदनी फूटी, तब भी रोहिणी घाट पर बैठी रो रही है । उसका घड़ा तब भी जल पर तैर रहा है । तब गोविन्दलाल बगीचे से घर की तरफ चले । जाने के समय देखा कि तब भी रोहिणी घाट पर बैठी है ।

अब तक अबला अकेली बैठी रो रही है, देखकर उन्हें कुछ दुःख हुआ। उनके मन में आया कि यह स्त्री सच्चरित्रा हो, दुश्चरित्रा हो, यह भी उस जगत्-पिता की प्रेरित संसार-पतंग है, मैं भी वही उनका प्रेरित संसार-पतंग; अतएव यह भी मेरी बहन है। अगर मैं इसका दुःख दूर कर सकूँ, तो क्यों न करूँ ?

गोविन्दलाल धीरे धीरे सीढ़ियाँ उतर कर रोहिणी के पास जाकर उसकी बगल में चम्पे के रंगवाली उस चाँदनी में खड़े हुए। रोहिणी देखकर चौक उठी।

गोविन्दलाल ने पूछा, “रोहिणी ! तुम अब तक अकेली बैठी रो क्यों रही हो ?”

रोहिणी उठ कर खड़ी हुई, परन्तु बोली नहीं।

गोविन्दलाल ने फिर कहा, “तुम्हें क्या दुःख है, क्या मुझसे नहीं कहोगी ? अगर मैं कोई उपकार कर सकूँ !”

जिस रोहिणी ने हरलाल के सामने मुखरा की तरह बातचीत की थी, गोविन्दलाल के सामने वह रोहिणी एक बात भी नहीं कह सकी। कुछ बोली नहीं। गढ़ी हुई पुतली की तरह उस सरोवर के सोपान की शोभा बढ़ाने लगी। गोविन्दलाल ने सरोवर के स्वच्छ जल में भास्कर की कीर्ति जैसी उस मूर्ति की छाया देखी, पूर्णचन्द्र की छाया देखी और कुसुमित कांचन आदिक वृत्तों की छाया देखी। सब सुन्दर हैं। केवल निर्दयता असुन्दर है ! सृष्टि करुणामयी है। मनुष्य अकरुण है। गोविन्दलाल ने प्रकृति के साफ साफ लिखे अक्षर पढ़े। रोहिणी से फिर कहा, “तुम्हें अगर किसी बात की तकलीफ हो, तो आज हो, कल हो, मुझसे कहो। खुद न कह सको तो मेरे मकान की स्त्रियों से मालूम कराओ।”

रोहिणी इस पर बोली। कहा, “एक दिन कहूँगी। आज नहीं। एक दिन तुम्हें मेरी बात सुननी होगी।”

गोविन्दलाल स्वीकृत होकर घर की तरफ गये। रोहिणी ने पानी में उतर कर स्नान किया, फिर घड़ा पकड़ कर पानी में डुबोया। घड़ा तब भक भक, गल गल करता हुआ बड़ा एतराज करता रहा। मैं जानता हूँ खाली घड़े में पानी भरने चाहिए तो घड़ा, मिट्टी का घड़ा हो या मनुष्य का घड़ा हो, ऐसी ही आपत्ति किया करता है, बड़ा गुल-गपाड़ा मचाता है। बाद को खाली घड़ा पानी से भर जाने पर, रोहिणी घाट पर चढ़ कर, गीले वस्त्र से देह अच्छी तरह ठक कर धीरे-धीरे घर को चली। तब 'छलक, छलक, छल ! ठनक, ठनक, ठन !'—इस तरह घड़े के और घड़े के पानी से और रोहिणी के कंगन से बातचीत होने लगी। और रोहिणी का मन भी उस बात-चीत से जा मिला।

रोहिणी के मन ने कहा—विल छलनेवाला काम !

पानी ने कहा—छलात्।

रोहिणी का मन—काम अच्छा नहीं हुआ।

कंगन ने कहा—ढिन्ना—नहीं सो तो नहीं हुआ।

रोहिणी का मन—अब उपाय ?

कलसी—ठनक, ठनक, ठन—उपाय मैं हूँ—रस्सी के साथ।

आठवाँ परिच्छेद

रोहिणी सबेरे-सबेरे खाना पकाने का काम पूराकर, ब्रह्मानन्द को खिलाकर, खुद बिना कुछ खाये शयन-गृह का दरवाजा बन्द कर लेटी। सोने के लिए नहीं सोचने के लिए।

तुम दार्शनिक हो, विज्ञानविदों के मतामत को कुछ देर के लिए छोड़कर मेरे पास आओ, एक बात सुनो। सुमति नाम की देव-कन्या

और कुमति नाम की राक्षसी ये दोनों सदा मनुष्य के हृदय में विचरण करती हैं। और सदा एक दूसरे से तकरार करती रहती हैं। जैसे दो बाघिनें मरी गऊ को लेकर एक दूसरी से लड़ती हैं, जैसे दो सियारिनें लाश के पीछे तकरार करती हैं, या जिन्दा आदमी को लेकर वैसा ही करती हैं, आज इस एकान्त शयनागार में रोहिणी को लेकर वे दोनों उसी तरह घोर विवाद करने लगीं। सुमति ने कहा,—“ऐसे आदमी का भी सर्वनाश किया जाता है ?”

कुमति—विल तो हरलाल को दिया नहीं, सर्वनाश कब किया ?

सुमति—कृष्णकान्त का विल कृष्णकान्त को लौटा दो।

कुमति—वाह ! जब कृष्णकान्त मुझसे पूछेंगे, “यह विल तुम्हें कहाँ मिला और मेरी जिन्दगी में यह एक जालवाला कहाँ से आया।” तब मैं क्या कहूँगी ? कितनी मज्जेदार बात है ! काका को और मुझे थाना जाने के लिए कहती हो ?

सुमति—तो कुल बातें गोविन्दलाल से खोल कर, कह कर, उनके पैरों में रोक कर क्यों नहीं पड़तीं ? वे दयालु हैं, अवश्य तुम्हें बचा लेंगे।

कुमति—वही बात। गोविन्दलाल को जरूर ये सब बातें कृष्णकान्त से कहनी होंगी, नहीं तो विल का बदलाव नहीं होगा। कृष्णकान्त अगर पुलिस के सुपुर्द करें तो गोविन्दलाल बचायेंगे किस तरह ? बल्कि एक और परामर्श है अभी चुप करके रहे। पहले कृष्णकान्त मरें इसके बाद तुम्हारी सलाह के अनुसार गोविन्दलाल के पास जाकर उनके पैरों पड़ूँगी। तब उन्हें विल दूँगी।

सुमति—तब व्यर्थ होगा। जो विल कृष्णकान्त के घर में पाया जायगा, वही सही माना जायगा। गोविन्दलाल वह विल बाहर निकालने पर जाल के अपवाद में आ सकते हैं।

कुमति—तो चुपचाप बैठी रहो, जो कुछ होना है वह होगा ।
अस्तु, सुमति चुप हो गई, उसकी पराजय हुई । इसके बाद दोनों
सन्धि करके सख्यभाव से एक दूसरे काम में लगीं । वह वापी-
तीरवाली चाँदनी में प्रतिभासित, चम्पकदाम-निर्मित देव-मूर्ति को
लेकर रोहिणी ने मानस-नेत्रों के सामने रक्खा; रोहिणी देखने
लगी, देखती देखती रोने लगी । उस रात में रोहिणी की आँखें
नहीं लगीं ।

नवाँ परिच्छेद

तभी से रोहिणी रोज़ बगल में घड़ा दबाये वारुणी पुष्करिणी
में पानी लेने जाती है, रोज़ कोयल कूकती है, रोज़ उसी गोविन्दलाल
को बगीचे के भीतर देखती है, रोज़ सुमति-कुमति में सन्धि-विग्रह
घटते हैं । सुमति-कुमति का विवाद तो मनुष्य सह लेता है, परन्तु
सुमति-कुमति का मेल बड़ा ही विपत्तिजनक है । जब सुमति, कुमति
का भाव धारण करती है, कुमति, सुमति का काम करती है, तब
कौन सुमति है, पहचाना नहीं जा सकता । आदमी सुमति के नाम से
कुमति के वशीभूत होता है । कुछ हो, कुमति हो, सुमति हो,
गोविन्दलाल का रूप रोहिणी के हृदय-पट पर दिन पर दिन गहरे से
गहरे रंग से अंकित होने लगा । चित्र-पट अँधेरा है, चित्र उज्ज्वल ।
दिन पर दिन चित्र उज्ज्वलतर, चित्र-पट गहरे से गहरा अंधकार होने
लगा । तब संसार उसकी आँखों में—खैर, पुरानी बात उठाने की
आवश्यकता नहीं । रोहिणी सहसा गोविन्दलाल के प्रति मन ही मन
बहुत ही गुप्त रूप से प्रणयासक्त हुई । कुमति की फिर विजय हुई ।

किन्तु इतने दिनों के बाद उसकी यह दुर्दशा हुई, यह मैं समझ नहीं सका और समझ भी नहीं सकूँगा। यही रोहिणी गोविन्दलाल को बाल-काल से देख रही है, कभी उसके प्रति रोहिणी का चित्त आकृष्ट नहीं हुआ। आज एकाएक क्यों हुआ ? मैं नहीं जानता। जो जो कुछ संघटित हुआ था, वह वह मैंने कहा है। वह दुष्ट कोयल की कूक, वह वापी-तट पर रुदन, वह समय, वह स्थान, वह चित्त का भाव, इसके बाद गोविन्दलाल को असमय करुणा, फिर गोविन्दलाल के प्रति रोहिणी का अपराध के बिना ही अन्याय-पूर्ण आचरण, इन उपलब्धियों से कुछ काल तक लगातार गोविन्दलाल ने रोहिणी के मन में स्थान पाया था। इससे क्या हुआ है क्या नहीं, यह मुझे नहीं मालूम, जैसी घटना हुई, मैं वही लिख रहा हूँ।

रोहिणी बड़ी बुद्धिमती है। एक साथ ही समझो कि यह मरने की बात है। यदि गोविन्दलाल को इस बात का लेश भी मालूम हो जाय, तो वह कभी उसकी छाँह के पास से भी नहीं गुज़रेगा। मुमकिन है, गाँव के बाहर निकाल दे। किसी दूसरे से यह कहने की बात नहीं। रोहिणी बड़े यत्न से मन की बात मन में छिपाये रही।

लेकिन छिपी आग जिस तरह भीतर से जलाती आती है, रोहिणी का चित्त वैसा ही होने लगा। जिन्दगी का भार उठाना रोहिणी के लिए कष्टदायक हुआ। रोहिणी मन ही मन दिनरात मृत्यु-कामना करने लगी।

कितने आदमी मन में मृत्यु-कामना करते हैं, कौन इसकी संख्या रखता है ? मुझे मालूम देता है, जो सुखी है, वही दुखी है, उनमें अधिकांश जन ही मन, वाणी और शरीर से मृत्यु की कामना करते हैं। इस पृथ्वी का सुख सुख नहीं, सुख भी दुःखमय है; किसी सुख में भी सुख नहीं, कोई भी सुख सम्पूर्ण नहीं, इसी लिए अधिकांश जन मृत्यु की कामना करते हैं और दुःखी, दुःख

का भार और अधिक न ढो सकने के कारण मृत्यु को पुकारते हैं। परन्तु किसके पास मृत्यु आती है? पुकारने से मृत्यु नहीं आती। जो सुखी है, जो मरना नहीं चाहता, जो सुन्दर है, जो युवा है, जो आशा से भरा है, जिसकी आँखों में पृथिवी नन्दन-विपिन है, मृत्यु उसी के पास आती है। रोहिणी-जैसी किसी के पास नहीं आती। इधर मनुष्य की इतनी कम शक्ति है कि मृत्यु को वह बुला नहीं ला सकता। एक छोटो-सी सुई बेध लेने पर, आधी बूँद दवा खा लेने पर यह नश्वर जीवन विनष्ट हो सकता है, यह चंचल जीवन-बिम्ब काल-समुद्र में मिल सकता है, किन्तु आन्तरिक मृत्यु-कामना करने पर भी प्रायः कोई इच्छापूर्वक वह सुई नहीं बेधता, वह आधी बूँद दवा नहीं पीता। कोई कोई ऐसा कर सकते हैं, किन्तु रोहिणी उस दिल की नहीं, रोहिणी वैसा नहीं कर सकती।

परन्तु इस विषय में रोहिणी कृत-संकल्प हुई। जाली विल जलाया नहीं जायगा। इसका एक सीधा उपाय था। कृष्णकान्त से कहने पर या किसी से कहला देने पर ही काम बन जाता कि महाशय का विल चुराया गया, दराज़ खोल कर जो विल है उसे पढ़ कर देखिए। रोहिणी ने चुराया था, यह जाहिर करने की ज़रूरत नहीं, किसी ने चुराया, कृष्णकान्त के मन में एक दफा ज़रा भी संदेह पैदा होने पर वे सन्दूक खोल कर विल पढ़ कर देखेंगे, तो जाली विल देखकर नया विल लिखवायेंगे। गोविन्दलाल की सम्पत्ति की रक्षा होगी, फिर भी कोई मालूम नहीं कर सकेगा कि किसने विल चुराया था! परन्तु इसमें एक आकत है—कृष्णकान्त जाली विल पढ़ने पर मालूम कर सकेंगे कि यह ब्रह्मानन्द के हाथ के अक्षर हैं, तब ब्रह्मानन्द बड़ी आकत में फँसेंगे। इसलिए दराज़ में जो जाली विल है, वह किसी दूसरे के सामने निकाला नहीं जा सकता।

अस्तु, हरलाल के लोभ से रोहिणी ने गोविन्दलाल का जो गुरुतर अनिष्ट सिद्ध कर रक्खा था, उसके प्रतिकार के लिए बहुत व्याकुल होने पर भी वह अपने चाचा की रक्षा के विचार को कुछ न कर सकी। अंत में उसने यह सिद्ध किया कि जिस तरह वह असली विल चुराकर वह जाली विल रख आई थी, उसी तरह फिर असली विल रख कर जाली विल लायेगी।

आधी रात को रोहिणी सुन्दरी असली विल लेकर हिम्मत के सहारे अकेली कृष्णकान्त राय के कमरे की तरफ चली, खिड़कीवाला दरवाजा बन्द है, सदर फाटक पर जहाँ चार दरबान चारपाई पर बैठे हुए अधखुली आँखों और अधरुंधे गले से पीतू रागिनी के बाप की सराध कर रहे थे, रोहिणी वहीं उपस्थित हुई। दरबानों ने पूछा, “तू कौन है?” रोहिणी ने कहा, “सखी।”

सखी उस घर की एक जवान नौकरानी है, इसलिए दरबानों ने फिर कुछ नहीं कहा। रोहिणी बिना विज्ञ के घर के भीतर गई और पहले के जाने हुए रास्ते से कृष्णकान्त के शयनागार में प्रवेश किया। पूरा सुरक्षित होने के कारण कृष्णकान्त के शयनगृह के दरवाजे बंद नहीं रहते थे। घुसने के वक्त कान लगाकर रोहिणी ने सुना, बिना किसी बाधा के कृष्णकान्त खरगटे ले रहे हैं। तब धीरे धीरे बिना आहट के विल-चोर ने कमरे के भीतर प्रवेश किया। प्रवेश कर पहले ही दिया गुल कर दिया। बाद को पहले की तरह कुंजी ली और पहले की तरह अँधेरे में टटोल कर दराज खोली।

रोहिणी बहुत सावधान है, हाथों की गति बहुत लघु। फिर भी कुंजी खोलते खट से थोड़ी-सी खटक हुई। उस आवाज़ से कृष्णकान्त की नींद टूट गई।

कृष्णकान्त ठीक समझ न सके कि कैसे आवाज़ आई। कोई आहट उन्होंने नहीं दी, कान लगाये रहे। रोहिणी ने भी देखा कि

खर्राटा बन्द हो गया। रोहिणी समझी कि कृष्णकान्त की नींद टूट गई। रोहिणी चुपचाप स्थिर हो गई।

कृष्णकान्त ने पूछा, “कौन है?” किसी ने कोई जवाब नहीं दिया।

अब यह वह रोहिणी नहीं। रोहिणी अब दुबली, सताई हुई विवश है—शायद कुछ डरी भी;—कुछ साँस का शब्द हुआ था। वह शब्द कृष्णकान्त के कानों में गया। कृष्णकान्त ने हरी को कुछ दफा पुकारा, रोहिणी अगर चाहती तो इस अवसर पर भाग सकती थी, परन्तु इससे गोविन्दलाल का प्रतिकार नहीं हुआ। रोहिणी ने सोचा, “बुरे काम के लिए उस दिन जो हिम्मत की थी, आज अच्छे काम के लिए वह क्यों नहीं कर सकूंगी? पकड़ी जाऊँ तो पकड़ी जाऊँगी।”

रोहिणी भागी नहीं। कृष्णकान्त ने हरी को कई आवाजें लगाने पर भी कोई उत्तर नहीं पाया। हरी दूसरी जगह सुख की खोज में गया था—जल्द लौटेगा। तब कृष्णकान्त ने तकिया के नीचे से दियासलाई निकाल कर एकाएक आग जलाई। सलाई के जलते ही देखा, कमरे में दराज के पास औरत है।

जलती हुई सलाई से कृष्णकान्त ने बत्ती जलाई। औरत को सम्बोधन करके पूछा, “तुम कौन हो?”

रोहिणी कृष्णकान्त के पास गई। कहा, “मैं रोहिणी हूँ।”

कृष्णकान्त ताज्जुब में आये, पूछा, “इतनी रात को अँधेरे में यहाँ क्या कर रही थीं?”

रोहिणी ने कहा, “चोरी कर रही थी।”

कृष्ण०—मजाक रहने दो। ऐसे समय तुम्हें यहाँ क्यों देखा? बतलाओ। तुम चोरी करने के लिए आई हो, इस पर एकाएक हमें विश्वास नहीं हुआ। लेकिन चोर की हालत में ही तुम्हें देख रहे हैं।

रोहिणी ने कहा, “तो मैं जो कुछ करने के लिए आई हूँ, आपके सामने ही करती हूँ। बाद को मेरे प्रति जैसा व्यवहार आपको उचित जान पड़े कीजिएगा। मैं पकड़ में आई हूँ, भाग नहीं सकती। भगूंगी नहीं।”

यह कह कर रोहिणी दराज के पास गई, दराज को खींच कर खोला, उसके भीतर से जाली विल निकाल कर सच्चा विल रक्खा। बाद को जाली विल फाड़ कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

“हाँ हाँ, वह क्या फाड़ती हो ? देखें, देखें !”

कह कर कृष्णकान्त चीत्कार कर उठे। परन्तु उनके चिल्लाते चिल्लाते रोहिणी ने विल के टुकड़ों को आग में लगा कर भस्मीभूत कर दिया।

क्रोध से कृष्णकान्त की आँखें लाल हो गईं। उन्होंने पूछा, “यह क्या जलाया तुमने ?”

रोहिणी—एक जाली विल। कृष्णकान्त काँप उठे, “विल ! विल !! हमारा विल कहाँ है ?”

रो०—आपका विल दराज के भीतर है, पहले खोल कर देखिए तो ?

इस युवती की स्थिरता और निश्चिन्तता देखकर कृष्णकान्त विस्मय में आ गये। सोचा, “कोई देवता छल करने के लिए तो नहीं आया ?”

कृष्णकान्त ने तब दराज खोल कर देखा, एक विल उसके भीतर है। उसे बाहर निकाला, फिर चरमा निकाला। विल पढ़ कर देखा तो मालूम हुआ कि वह उनका सच्चा विल ही है। विस्मित होकर फिर पूछा “तुमने जलाया क्या ?”

रो०—एक जाली विल।

कृष्ण०—जाली विल किसने तैयार किया ? तुम्हें वह कहाँ मिला ?

रो०—किसने तैयार किया, यह मैं नहीं कह सकती—वह मुझे इसी दराज़ के भीतर मिला ।

कृष्ण०—तुम्हें किस तरह मालूम हुआ कि दराज़ के भीतर जाली विल है ?

रो०—यह मैं नहीं कह सकती ।

कृष्णकान्त कुछ देर तक सोचते रहे । अंत में कहा, “अगर हम तुम्हारी तरह की थोड़ी बुद्धिवाली स्त्री के भीतर पैठ नहीं सके तो इस सम्पत्ति को इतने दिनों तक रक्षा किस तरह की ? यह जाली विल हरलाल का बनाया हुआ है । जान पड़ता है तुम उसके पास से रुपया लेकर जाली विल रख कर असली विल जलाने आई थीं । इसके बाद पकड़ में आने पर, डर से जाली विल तुमने फाड़ डाला । सही बात है या नहीं ?”

रो०—नहीं, ऐसा नहीं ।

कृष्ण०—ऐसा नहीं ? तो फिर क्या ?

रो०—मैं कुछ नहीं कहूँगी । मैं आपके कमरे में चोर की तरह बैठी थी, मुझसे जैसा बर्ताव आप करना चाहें, कीजिए ।

कृष्ण०—तुम बुरा काम करने के लिए आई थीं, इसमें संदेह नहीं, नहीं तो इस तरह चोर की तरह क्यों आतीं ? इसका उचित दंड अवश्य दूँगा । तुम्हें पुलिस के हवाले नहीं करूँगा, किन्तु कल तुम्हारा सर मुड़ा कर, मट्ठा डाल कर, तुम्हें गाँव के बाहर निकाल दूँगा । आज तुम कैद रहो ।

रोहिणी उस रात कैद रही ।

दसवाँ परिच्छेद

वह रात पार होने पर शयनगृह के मुक्त वातायन-पथ में गोविन्दलाल खड़े हैं। ठीक ठीक प्रभात नहीं हुआ—कुछ बाकी है। अभी तक घर के आँगनवाले कामिनीकुंज में कोयल पहले पहल नहीं कूकी। लेकिन दायल ने चहकना शुरू कर दिया है, ऊषा की शीतल वायु बह चली है—गोविन्दलाल झरोखा खोल कर उसी उद्यान की मलिका, गन्धराज, कुटज आदि के परिमल से उठनेवाली शीतल प्रभात वायु के सेवन के लिए उसके पास खड़े हैं। साथ ही उनकी बगल में एक पतली-दुबली बालिका आकर खड़ी हुई।

गोविन्दलाल ने पूछा, “तुम फिर यहाँ क्यों आई ?

बालिका ने जवाब दिया, “तुम यहाँ क्यों आये ?” कहना नहीं होगा कि यह बालिका गोविन्दलाल की स्त्री है।

गो०—मैं ज़रा हवा खाने के लिए आया हूँ, यह भी तुमसे नहीं सहा गया ?

बालिका ने जवाब दिया, “सहा क्यों जायेगा ? फिर वही खाने की बात ? घर की चीज़ें खाकर मन नहीं भरता, बाहर की हवा खाने के लिए भाँकते हैं ?”

गो०—घर की चीज़ें इतनी क्या खाई ?

“क्यों अभी मुझसे गालियाँ खाई हैं।”

गो०—तुम जानती नहीं, भौंरा ! गालियाँ खाने पर अगर बंगाली लड़कों का पेट भरा होता, तो इस देश के आदमी अब तक सपरिवार हाज़मे की शिकायत से मर गये होते। यह चीज़ बहुत सीधी तरह बंगाली के पेट में हज़म हो जाती है। तुम एक दफ़ा और नथ हिलाओ भौंरा ! मैं एक दफ़ा और देखूँ। गोविन्दलाल की पत्नी का यथार्थ नाम कृष्णामोहिनी, या कृष्ण-कामिनी, या आनन्दमंजरी या ऐसा ही कुछ उसके माता-पिता का

रक्खा हुआ था, यह इतिहास में लिखा नहीं। बिना प्रयोग के वह नाम लुप्त हो गया था। उसका आदरवाला नाम भ्रमर या भौरा था। सार्थकता के कारण यह नाम प्रचलित हुआ था। भौरा काली थी, भौरा नथ हिलाने में आपत्ति प्रकट करने के लिए नथ खेल कर एक डिब्बे में रख कर, गोविन्दलाल की नाक पकड़ कर हिला दी, बाद को गोविन्दलाल के मुँह की तरफ़ देखकर मधुर मधुर हँसने लगी,—मन ही मन समझने लगी जैसे कोई बड़ी कीर्ति का काम किया हो। गोविन्दलाल भी उसके मुँह की तरफ़ अतृप्त आँखों से देख रहे थे। उसी समय सूर्योदयसूचक प्रथम रश्मि-किरीट पूर्वाकाश में देख पड़ा,—उसकी मृदुल ज्योतियाँ भू-मंडल में प्रतिफलित होने लगीं। नया प्रकाश पूर्व की तरफ़ से आकर पूर्व को मुँह किये हुए भौरा के मुँह पर पड़ा, उस उज्ज्वल, साफ़, कोमल, श्वेत मुख-कान्ति पर कोमल प्रभात-किरण गिरती हुई उसकी विस्फारित लीलांचल आँखों पर चमकी, उसके स्निग्ध उज्ज्वल कपोलों पर प्रभासित हुई। हँसी और चितवन में, वह किरण गोविन्दलाल के आदर और प्रभात की हवा में मिलित हो गई।

इसी वक्त सो कर उठी हुई नौकरानियों में एक गुल-गपाड़ा मचा। इसके बाद घर बुहारना, पानी छींटना, बासन मलना आदि की एक सप्-सप्, छप-छप, छन-छन, खन्-खन् होने लगी; एकाएक यह आवाज़ बंद हो गई; “अरी माई री, अब क्या होगा !” “क्या आकत है” “कैसी हिम्मत !” “कैसी सीनाजोरी !” रह रह कर हँसी-मजाक और व्यंग्य के शब्द उठने लगे। सुन कर भ्रमर बाहर आई।

नौकरानियों का सम्प्रदाय भ्रमर को बहुत मानता नहीं था, इसके कुछ कारण थे। पहले तो भ्रमर बालिका थी, इस पर भ्रमर स्वयं गृहिणी नहीं थी, उसके सास और ननद थीं, इसके बाद भ्रमर जितना हँसने में पटु थी, शासन में उतना नहीं थी। भ्रमर को देखकर नौकरानियों के दिल ने बड़ा गुल मचाया—

नम्बर १—और तुमने सुना, बहू जी ?

नं० २—ऐसी राजब की बात किसी ने कभी सुनी नहीं ;

नं० ३—कितनी हिम्मत ! औरत के भाड़ू लगा आऊँ चल कर ?

नं० ४—सिर्फ भाड़ू ? बहू जी कहो तो मैं उसकी नाक काट कर ले आऊँ ।

नं० ५—किसके पेट में क्या है, अरी माई, यह कैसे समझू ?

भ्रमर ने हँस कर पूछा, “पहले यह तो बता कि हुआ क्या है, इसके बाद जैसा जी में आये, करना ।” उस वज्रत फिर पहले की तरह गुल-गपाड़ा शुरू हुआ ।

नं० १—अरे, तुमने नहीं सुना ? सारे टोले में बात फैल गई—

नं० २—लोगों ने कहा—शेर के घर में स्यार ?

नं० ३—जी चाहता है, भाड़ू से औरत का कुल ज़हर उतार दूँ ।

नं० ४—क्या कहूँ बहू जी, बौनी होकर चाँद को हाथ बढ़ाये !

नं० ५—भीगी बिस्ली पहचान में नहीं आई, डूब मर चुल्लू भर पानी में !

भ्रमर ने कहा, “तू ।”

नौकरानियाँ सब मिल कर कहने लगीं “हमारा क्या कसूर है । हमने क्या किया है ? लेकिन यह हमें मालूम है कि कहीं भी कुछ होगा तो कसूर समझा जायेगा हमारा । हमारा अब कहीं सहारा नहीं, इसलिए मिहन्त कर पेट भरने आई हैं ।” वक्तृता समाप्त कर उनमें से दो-एक आँखों में आँचल लगाकर रोने लगीं । एक का मरी लड़की का शोक उमड़ चला । भ्रमर व्याकुल हुई—लेकिन हँसी भी नहीं रोक सकी । कहा, “तुम सबको चुल्लू भर पानी इसलिए चाहिए कि तुम लोग यह नहीं बतला सकीं कि बात क्या है ? क्या हुआ है ?”

तब फिर चारों तरफ़ से चार-पाँच तरह के गले चले। पहले गले से भ्रमर उस अनन्त वक्तृता की परम्परा से यह भावार्थ लगा सकी कि पिछली रात को मालिक महाशय के शयन-कक्ष में कोई चोरी हो गई है। किसी ने कहा, चोरी नहीं, डाका है,—किसी ने कहा, सनद ले गये हैं, किसी ने कहा, नहीं, सिर्फ़ चार-पाँच चोर आये थे, और एक लाख रुपये का कम्पनी का कागज़ ले गये हैं।

भ्रमर ने पूछा, “इसके बाद किस औरत की नाक काटने चली थी?”

न० १—रोहिणी की—और किसकी ?

न० २—वही आवारा तो कुल सत्यानाश की जड़ है।

न० ३—सुना है कि वही डाकुओं का दल साथ ले आई थी।

न० ४—जैसा काम है वैसा ही फल।

न० ५—अब मरे सज़ा काटती हुई।

भ्रमर ने पूछा, “रोहिणी चोरी करने आई थी, तुम लोगों को कैसे मालूम हुआ?”

“क्यों, वह पकड़ी जो गई है। कचहरी की गारद में कैद है।”

भ्रमर ने जैसा सुना वैसा गोविन्दलाल से जाकर कहा, गोविन्दलाल ने सोच कर गर्दन हिलाई।

भ्र०—गर्दन जो हिलाई ?

गो०—मुझे विश्वास नहीं होता कि रोहिणी चोरी करने आई थी। तुम्हें विश्वास होता है ?

भौरा ने कहा, “नहीं।”

गो०—क्यों तुम्हें विश्वास नहीं होता, मुझे बतलाओ तो। लोग तो कह रहे हैं।

भ्र०—तुम्हें विश्वास क्यों नहीं होता, मुझे बतलाओ।

गो०—अच्छा तो दूसरे वक्त बतलाऊंगा—तुम्हें विश्वास क्यों नहीं होता, पहले तुम कहो।

भ्र०—पहले तुम कहो ।

गोविन्दलाल हँसे । कहा, “तुम पहले ।”

भ्र०—क्यों पहले कहूँ ?

गो०—मेरी सुनने की साध होती है ।

भ्र०—सच सच कहूँ ?

गो०—हाँ ।

भ्रमर ‘कहूँ कहूँ’ कर भी नहीं कह सकी । लाज से सर मुकाये हुए चुपचाप खड़ी रही । गोविन्दलाल समझे, पहले भी समझा था—इसी लिए इतने दबाव से पूछ रहे थे । रोहिणी निरपराधिनी है, भ्रमर को इस पर दृढ़ विश्वास था । अपने अस्तित्व पर जितना विश्वास है, उसकी निर्दोषता पर भ्रमर को उतना विश्वास था । परन्तु उस विश्वास का कोई दूसरा कारण न था—सिर्फ गोविन्दलाल ने कहा था, “वह निर्दोष है, मुझे ऐसा विश्वास है ।”

गोविन्दलाल के विश्वास पर ही भ्रमर का विश्वास था । गोविन्दलाल यह समझ गये थे । वे भ्रमर को पहचानते थे इसी लिए उस काली को इतना प्यार करते थे । हँस कर गोविन्दलाल ने कहा, “मैं बतलाऊँ, क्यों तुम रोहिणी की तरफ हो ?”

भ्र०—क्यों ?

गो०—वह तुम्हें काली न कह कर खिलती हुई साँवली कहती है ।

भ्रमर ने कुटिल कटाक्ष कर कहा, “चलो, चलो !”

गोविन्दलाल ने कहा, “चलता हूँ” यह कह कर गोविन्दलाल चले ।

भ्रमर ने उनके कपड़े पकड़ कर कहा—“कहाँ जाते हो ?”

गो०—कहाँ जाता हूँ, बतलाओ तो ।

भ्र०—अब के बतलाऊँ ?

गो०—अच्छा बतलाओ ।

अ०—रोहिणी को बचाने के लिए ।

“हाँ ।” कह कर गोविन्दलाल ने भौरा का मुँह चूमा । पर-दुःख-कातर हृदय को पर-दुःख-कातर समझा—इसी लिए गोविन्दलाल ने भ्रमर का मुँह चूमा ।



ग्यारहवाँ परिच्छेद

गोविन्दलाल कृष्णकान्त राय की सदर कचहरी में गये । कृष्णकान्त सुबह के वक्त कचहरी में बैठे थे, गद्दी पर तकिया लगाये बैठे हुए सोने की फर्शी में अम्बरी तम्बाकू पीते हुए मृत्यु-लोक में स्वर्ग का अनुकरण कर रहे थे । एक तरफ काराजों की राशियाँ बंद थीं—चिट्ठा, खतियान, दाकिला, जमावासिल, बाकी, स्याहा, रोकड़ वगैरह । दूसरी तरफ नायब, गुमास्ता, कारकुन, मुहरिरे, तहसीलदार, अमीन, सिपाही, रिआया । सामने सर भुकाये हुए धूँवट काढ़े रोहिणी ।

गोविन्दलाल बड़े आदर के भतीजे थे । उन्होंने जाते ही पूछा, “क्या होता है, ताऊ जी ?”

उनके गले की आवाज़ सुनकर रोहिणी ने धूँवट कुछ उठा कर उनकी ओर क्षणिक कटाक्ष किया । कृष्णकान्त ने उनकी बात पर क्या जवाब दिया, उसकी तरफ गोविन्दलाल बहुत ध्यान नहीं दे सके । सोचते रहे, इस कटाक्ष का क्या मतलब है ? अन्त में सिद्धान्त किया, “इस कटाक्ष का अर्थ है—भिक्षा ।” कैसी भिक्षा ? गोविन्दलाल ने सोचा, आँ की भिक्षा और क्या होगी ? विपत्ति से उद्धार । उस बापी के किनारे सोपान के ऊपर खड़े खड़े जो बात-

चीत हुई थी, वह भी इस वक़्त उन्हें याद आई। गोविन्दलाल ने रोहिणी से कहा था, “तुम्हें अगर किसी बात की तकलीफ़ हो, तो आज हो, या कल हो, मुझसे बतलाना।”

आज तो सही सही रोहिणी को तकलीफ़ है, जान पड़ता है कि इस इशारे से रोहिणी ने उन्हें समझाया।

गोविन्दलाल ने सोचा, “तुम्हारा कन्याण करूँ, मेरी यह इच्छा है; क्योंकि इस लोक में तुम्हारा सहायक कोई नहीं देख रहा हूँ। किन्तु, तुम जिस आदमी के हाथ पड़ी हो, तुम्हारी रक्षा सहज नहीं।”

यह सोच कर ताऊ जी से उन्होंने खुल कर पूछा, “क्या हुआ है ताऊ जी?”

वृद्ध कृष्णकान्त एक दफ़ा कुल बातें शुरू से अज़ीर तक गोविन्दलाल से कह गये थे, मगर गोविन्दलाल रोहिणी के कटाक्ष की व्याख्या में उलझे थे, उनके कहने की ओर कान नहीं दिया। भतीजे ने फिर पूछा, “क्या हुआ है, ताऊ जी?” सुन कर वृद्ध ने मन में सोचा, “हो चुका! जान पड़ता है, लड़का इस औरत का चाँद जैसा मुँह देखकर भुला गया!”

कृष्णकान्त ने फिर शुरू से आखिर तक पिछली रातवाली बातें गोविन्दलाल से कहीं। समाप्त कर कहा, “यह उसी हरा पाजी की कारसाजी है। जान पड़ता है यह औरत उससे रुपया रिश्वत लेकर जाली विल रख कर असली विल चुराने आई थी इसके बाद पकड़ में आने पर इसने जाली विल फाड़ डाला।”

गो०—रोहिणी क्या कहती है?

कृष्ण०—वह और क्या कहेगी? कहती है, ऐसा नहीं।

गोविन्दलाल ने रोहिणी की तरफ़ फिर कर पूछा, “ऐसा नहीं, तो फिर क्या है, रोहिणी?”

रोहिणी मुँह बगैर उठाये गद्गद कंठ से बोली, “मैं आप लोगों के हाथ में पड़ी हूँ, जो कुछ करना हो, कीजिए। मैं और कुछ नहीं कह सकती।”

कृष्णकान्त ने कहा, “बदजाती देख ली?”

गोविन्दलाल ने सोचा, “इस पृथ्वी में सभी बदजात नहीं। इसके भीतर बदजात के सिवा और कुछ रह सकते हैं।” खुल कर पूछा, “इसके लिए आपने क्या हुक्म दिया है? इसे क्या थाने में भेजिएगा?”

कृष्णकान्त ने कहा, “मेरे पास थाना और सौजदारी क्या है? मैं ही थाना हूँ, मैं ही मजिस्टर हूँ, मैं ही जज। विशेष यह कि इस अदना औरत को जेल भेज कर मेरा कौन-सा पुरुषार्थ बढ़ेगा!”

गोविन्दलाल ने पूछा, “तो फिर क्या कीजिएगा?”

कृष्ण०—इसका सर मूँड कर, मट्टा डालकर, सूप की हवा दिलाते दिलाते गाँव से बाहर निकलवा दूँगा। मेरे आलोक में फिर न आ सके।

“गोविन्दलाल ने फिर रोहिणी की तरफ़ फिर कर पूछा, “क्या कहती हो, रोहिणी?”

रोहिणी ने कहा, “हानि क्या है?”

गोविन्दलाल ताज्जुब में आये। कुछ सोच कर कृष्णकान्त से कहा, “एक निवेदन है।”

कृष्ण०—क्या?

गो०—इसे एक दफ़ा छोड़ दीजिए। मैं जामिन हो रहा हूँ—दिन के १० बजे इसे ला दूँगा।

कृष्णकान्त ने सोचा, “शायद मैंने जो कुछ सोचा है वही है। चिरंजीव को कुछ ज्यादा गरज है, देख रहे हैं।” खुल कर पूछा, “कहाँ जायगी? क्यों छोड़ें?”

गोविन्दलाल ने कहा, “असली बात क्या है यह मालूम करना निहायत लाजिमी है, इतने आदमियों के सामने असली बात यह नहीं कह सकती। इसे अन्दर ले जाकर पूछ-ताछ करूँगा।”

कृष्णकान्त ने कहा, “अपनी नानी की दुम करोगे। इस काल के लड़के बड़े वेह्या हो गये हैं। लेकिन रड्डो बेटा, तुम पर एक चाल हम भी चलेंगे।

यह कह कर कृष्णकान्त ने कहा, “अच्छा तो है।” कह कर कृष्णकान्त ने एक सिपाही से कहा, “देखो ! इसे साथ लेकर, एक नौकरानी के हवाले कर दो, मभली बहूरानी के पास भेज दे, देखना, जैसे भाग न जाय।”

सिपाही रोहिणी को ले गया। गोविन्दलाल चले गये। कृष्णकान्त ने सोचा, “राम राम ! लड़के डो क्या गये ?”

बारहवाँ परिच्छेद

गोविन्दलाल ने अंतःपुर में आकर देखा कि भ्रमर रोहिणी को लेकर चुपचाप बैठी है। अच्छी बातें कहने की इच्छा है, परन्तु कहीं इस मामले में अच्छी बात कहने पर भी रोहिणी को रुलाई आये, इसलिए वह भी नहीं कह पा रही। गोविन्दलाल को आया देखकर भ्रमर जैसे उत्तरदायित्व से बची। जल्दी जल्दी कुछ दूर जाकर इशारे से गोविन्दलाल को बुलाया। गोविन्दलाल भ्रमर के पास गये। भ्रमर ने गोविन्दलाल से धीमी आवाज में पूछा, “रोहिणी यहाँ क्यों ?”

गोविन्दलाल ने कहा, “मैं एकान्त में उससे कुछ पूछूँगा। इसके बाद मेरे भाग्य में जो कुछ होगा, होगा।”

अ०—क्या पूछोगे ?

गो०—उसके मन की बात । मुझे उसके पास अकेला छोड़ जाने में यदि तुम्हें डर हो, तो न हो आड़ से सुनना ।

भौरा बहुत अप्रतिभ हुई । लाज से आँखें ढक कर दौड़ती हुई वह जगह छोड़ कर भग गई । सीधे पाकशाला में पहुँच कर पीछे से पाचिका के बाल पकड़ कर खींचती हुई बोली, “ऐ महाराजिन ! पकाती पकाती एक रूप-कथा कहे ।”

इस तरह गोविन्दलाल ने रोहिणी से पूछा, “यह वृत्तान्त क्या खेल कर कुल का कुल मुझसे कहेगी ?” कहने के लिए रोहिणी की छाती फटी जा रही थी—परन्तु जो जाति जीती हुई जलती चिता पर चढ़ी थी, रोहिणी भी उसी जाति की आर्य-कन्या थी । कहा, “मालिक से कुछ हाल सुना तो है ।”

गो०—मालिक ने कहा, “तुम जाली विल रख कर असली विल चुराने के लिए आई थीं ।” क्या यही है ?

रो०—नहीं ।

गो०—तो क्या ।

रो०—कह कर क्या होगा ?

गो०—तुम्हारा भला हो सकता है ?

रो०—आप विश्वास करें, तब न ?

गो०—विश्वासयो य बात होने पर क्यों विश्वास नहीं करूँगा ?

रो०—विश्वासयोग्य बात नहीं ।

गो०—मेरे पास क्या विश्वासयोग्य है और क्या अविश्वासयोग्य, यह मैं जानता हूँ, तुम किस तरह समझोगी ? मैं अविश्वासयोग्य बात पर भी कभी कभी विश्वास करता हूँ ।

रोहिणी मन ही मन बोली, “नहीं तो मैं तुम्हारे लिए मरने क्यों चली ? कुछ हो, मैं तो मरने चली हूँ, परन्तु तुम्हें एक दफा तौल

कर मरूँगी ।” खुल कर कहा, “यह आपकी महिमा है । परन्तु आपसे इस दुख की कथा कहने पर भी क्या होगा ?”

गो०—यदि मैं तुम्हारा कोई उपकार कर सकूँ !

रो०—क्या उपकार कीजिएगा ?

गोविन्दलाल ने सोचा, “इसकी जोड़ नहीं । कुछ हो, यह कातर है—इसे सहज ही नहीं छोड़ना चाहिए ।” खुल कर कहा, “अगर हो सकेगा तो मालिक से अनुरोध करूँगा । वह तुम्हें छोड़ देंगे ।”

रो०—और अगर आप अनुरोध न करें तो वे मेरा क्या करेंगे ?

गो०—सुना तो है ?

रो०—मेरा सर मुड़ा देंगे, मट्टा ढालेंगे, देश से बाहर निकाल देंगे । इसका भला-बुरा मेरी समझ में नहीं आ रहा । इस कलंक के बाद देश से बाहर निकाल देने में ही मेरा उपकार है । मुझे निकाल न देने पर मैं आप ही यह देश छोड़ कर चली जाऊँगी । और इस देश में मुह दिखाऊँगी किस तरह ? मट्टा ढालना बड़ा भारी दंड नहीं, धोने से धुल जायगा । रहा यह बाल—

यह कह कर रोहिणी ने एक दफा तरङ्गों से चुन्ध, काले तड़ाग जैसे अपने केश-दाम की तरफ निगाह की—कहने लगी—ये बाल, आप कैची लाने के लिए कहिए, मैं बहू जी के बालों की रस्सी बिनवाने के लिए कुल के कुल काट दूँगी ।”

गोविन्दलाल व्यथित हुए । लम्बी साँस छोड़ कर बोले, “मैं समझा, रोहिणी ! कलंक ही तुम्हारा दंड है । उस दंड से रक्षा न मिली तो दूसरे दंड के लिए तुम्हें आपत्ति नहीं ।”

रोहिणी इस दफा रोई । हृदय में गोविन्दलाल को शत-सहस्र धन्यवाद देने लगी । कहा, “अगर आप समझे हैं, तो मैं पूछती हूँ, इस कलंकरूपी दंड से क्या आप मेरी रक्षा कर सकेंगे ?”

गोविन्दलाल कुछ देर सोच कर बोले, “मैं कह नहीं सकता । असली बात सुनने पर कह सकूँगा कि रत्ना कर सकूँगा या नहीं ।”

रोहिणी ने कहा, “क्या जानना चाहते हैं, पूछिए ।”

गो०—तुमने जो कुछ जलाया है, वह क्या है ?

रो०—जाली विल ।

गो०—तुम्हें कहाँ मिला ?

रो०—मालिक के कमरे में, दराज़ में ।

गो०—जाली विल वहाँ किस तरह गया ?

रो०—मैं ही रख गई थी, जिस दिन असली विल की लिखा-पढ़ी हुई, रात को असली विल चुराकर जाली विल रख आई थी ।

गो०—क्यों, तुम्हारा क्या प्रयोजन था ?

रो०—हरलाल बाबू का अनुरोध था ।

गोविन्दलाल ने कहा, “तो कल रात को फिर क्या करने आई थीं ?”

रो०—असली विल रख कर जाली विल ले जाने के लिए ।

गो०—क्यों, जाली विल में क्या था ?

रो०—बड़े बाबू के बारह आने—आपका एक पैसा ।

गो०—फिर विल बदलने के लिए क्यों आईं ? मैंने तो कोई अनुरोध नहीं किया । रोहिणी रोने लगी । बड़े कष्ट से रोदन संवरण कर कहा, “नहीं, अनुरोध नहीं किया—किन्तु जो कुछ इस जन्म में मुझे कभी नहीं मिला—जो इस जन्म में और कभी नहीं पाऊँगी—वह आपने मुझे दिया था ।”

गो०—वह क्या है, रोहिणी ?

रो०—उसी वारुणी-पुष्करिणी के किनारे, याद कीजिए ।

गो०—क्या रोहिणी ?

रो०—क्या है ? इस जन्म में मैं कह नहीं सकती—क्या है । और कुछ नहीं कहिएगा । इस रोग की चिकित्सा नहीं—मेरी मुक्ति

नहीं—मैं विष पाने पर खाती; परन्तु वह आपके मकान में नहीं। आप मेरा दूसरा उपकार नहीं कर सकते हैं—परन्तु एक उपकार कर सकते हैं—मुझे एक दफा छोड़ दीजिए, मैं रो आऊँ। इसके बाद अगर मैं बची रहूँगी, तो न हो मेरा सर मूड़ कर मट्टा डाल कर मुझे देश-निकाला दे दीजिएगा।

गोविन्दलाल समझे। दर्पण के प्रतिबिम्ब की तरह रोहिणी का हृदय उन्होंने देखा। समझे, जिस मंत्र से भ्रमर मुग्ध है, यह भुजंगी भी उसी मंत्र से मुग्ध हुई है। उन्हें आनन्द नहीं हुआ—गुस्सा भी नहीं आया—जो हृदय समुद्रवत् था, उस समय वह उद्वेलित हुआ, उसमें दया का उच्छ्वास उठा। उन्होंने कहा, “रोहिणी, मृत्यु ही जान पड़ता है, तुम्हारे लिए अच्छी है, परन्तु मृत्यु की आवश्यकता नहीं। इस संसार में हम काम करने के लिए आये हैं—अपना अपना काम पूरा किये बगैर क्यों मरें?”

गोविन्दलाल इधर-उधर करने लगे। रोहिणी ने कहा, “बतलाइए न?”

गो०—तुम्हें यह देश छोड़ जाना होगा।

रो०—क्यों?

गो०—तुम तो पहले ही कह रही थीं, तुम यह देश छोड़ जाना चाहती हो।

रो०—मैं कह रही थी लज्जा के कारण, आप क्यों कहते हैं?

गो०—जिससे तुम्हारी मेरी फिर मुलाकात न हो।

रोहिणी ने देखा, गोविन्दलाल सब समझ गये हैं। मन ही मन बहुत अप्रतिभ हुई—बहुत सुखी हुई, अपनी कुल तकलीफ भूल गई। फिर उसे बचने की साध हुई। फिर उसमें देश में रहने की वासना पैदा हुई। मनुष्य बड़ा ही पराधीन है।

रोहिणी ने कहा, “मैं अभी जाने के लिए राजी हूँ, परन्तु कहाँ जाऊँगी?”

गो०—कलकत्ता । वहाँ मैं अपने एक दोस्त को पत्र लिख रहा हूँ । वे तुम्हें एक मकान खरीद देंगे, तुम्हारा रुपया नहीं लगेगा ।

रो०—मेरे चाचा के लिए क्या होगा ?

गो०—वे तुम्हारे साथ जायेंगे, नहीं तो तुम्हें कलकत्ता जाने के लिए न कहता ।

रो०—वहाँ दिन पार कैसे करूँगी ?

गो०—मेरे मित्र तुम्हारे चाचा के लिए एक नौकरी तलाश कर देंगे ।

रो०—चाचा देश छोड़ने को तैयार क्यों होंगे ?

गो०—क्या तुम उन्हें इस मामले के बाद राजी नहीं कर सकतीं ?

रो०—कर सकूँगी, परन्तु आपके ताऊ जी को राजी कौन करेगा ? वे मुझे छोड़ेंगे क्यों ?

गो०—मैं अनुरोध करूँगा ।

रो०—तो यह मेरे कलंक पर कलंक है । कुछ आपका भी कलंक है ।

गो०—सच है; तुम्हारे लिए मालिक के पास भ्रमर से अनुरोध कराऊँगा । तुम इस समय भ्रमर की खोज में जाओ । उसे भेज कर खुद इस मकान में रहो । बुलाने पर जैसी मुलाकात हो ।

रोहिणी सजल नयनों से गोविन्दलाल को देखती देखती भ्रमर की खोज में गई । इस तरह कलंक में, बंधन में, रोहिणी का पहला प्रणय-सम्भाषण हुआ ।

—

तेरहवाँ परिच्छेद

अमर ससुर से अनुरोध करने के लिए किसी तरह स्वीकृत नहीं हुई, कहा, “बड़ी लज्जा लगती है, छिः ! लाचार, गोविन्दलाल खुद कृष्णकान्त के पास गये। कृष्णकान्त उस समय भोजन के बाद पलंग पर अधलेटी हालत में फर्शी की नली हाथ में लगाये सो रहे थे। एक ओर उनकी नासिका-नाद से, गमक-गमक से, तान-मूर्च्छनादि से नानाविध राग-रागिनियाँ अलाप रही थीं, और दूसरी ओर उनका मन अफीम के प्रसाद से तीनों लोक में विचरनेवाले घोड़े पर सवार होकर नाना स्थानों में पर्यटन कर रहा था। रोहिणी का चाँद जैसा मुखड़ा, जान पड़ता है, बुढ़े के मन के भीतर पैठ गया था,—चाँद कहाँ नहीं उगता ? नहीं तो बुढ़ा अफीम के नशे में इन्द्राणी के कंधे पर ठुड्ठी क्यों रखता ? कृष्णकान्त देख रहे हैं, रोहिणी एकाएक इन्द्र की शची बन कर महादेव की गोशाला में साँड़ चुराने गई है। नन्दी ने त्रिशूल हाथ में लिये साँड़ की सानी करने के लिए जाकर उसे पकड़ा है। देख रहे हैं, नन्दी रोहिणी के खुले हुए बालों को पकड़कर खींच रहा है और षडानन का मोर उन गड़ी तक आते हुए घुँघराले बालों के गुच्छों को फन काढ़े हुए साँप की श्रेणी समझ कर निगल गया—ऐसे समय स्वयं षडानन मोर की ज्यादाती देखकर नालिश करने के लिए महादेव के पास पहुँच कर पुकार रहे हैं, “ताऊ जी !”

कृष्णकान्त विस्मित होकर सोच रहे हैं, कार्तिक महादेव को किस रिश्ते से ताऊ जी कह कर पुकार रहे हैं ? ऐसे समय कार्तिक ने फिर आवाज दी, “ताऊ जी !”

कृष्णकान्त ने बहुत परेशान होकर कार्तिक के कान ऐंठ देने के लिए हाथ बढ़ाया। साथ ही कृष्णकान्त के हाथ की नली हाथ से खुल कर झनझनाती हुई पान के डब्बे पर गिरी, पान का डब्बा

भनभनाता हुआ पीकदान पर गिरा और नली, डब्बा, पीकदान सबके सब एक साथ सहगमन करते हुए भूतलशायी हुए। उस आवाज़ से कृष्णकान्त की नींद टूट गई। उन्होंने आँखें खोलकर देखा कि सचमुच ही कार्तिकेय हाज़िर हैं। मूर्तिमान् स्कन्दवीर की तरह गोविन्दलाल उनके सामने खड़े हैं—पुकार रहे हैं, “ताऊ जी !”

कृष्णकान्त हक-बकाकर उठ बैठे और पूछा, “क्या है, बेटा गोविन्दलाल ?” गोविन्दलाल को वृद्ध बहुत प्यार करते थे।

गोविन्दलाल भी कुछ अप्रतिभ हुए—कहा, “आप सोइए, किसी ऐसे काम से नहीं आया।”

यह कह कर गोविन्दलाल ने पीकदान उठाकर सीधा करके पनडब्बा उठाकर, जहाँ का वहीं रख कर नली कृष्णकान्त के हाथ में दी।

परन्तु, कृष्णकान्त बड़े सख्त आदमी हैं—सहज ही मुलावे में नहीं आते—मन ही मन कहने लगे; कुछ नहीं, यह बदज़ात फिर उस चाँद जैसे मुँहवाली औरत की बात कहने आया है” खुल कर कहा, “नहीं, हमारी नींद पूरी हो गई—अब नहीं सोयेंगे।”

गोविन्दलाल कुछ ज़हमत में पड़े। रोहिणी की बात गोविन्दलाल को कहते सुबह उनको कोई लज्जा नहीं हुई, इस वक़्त कुछ लज्जा होने लगी। बात कहूँ कहूँ, करते हुए कह नहीं सके। रोहिणी के साथ वारुणी तालाब पर बात हुई थी, क्या इस वक़्त इसलिए लज्जा है ?

बुढ़ा तमाशा देखने लगा। गोविन्दलाल कोई बात कह नहीं रहे। देखकर खुद ज़मींदारी की बात चलाई—ज़मींदारी की बात के बाद, सांसारिक बात, सांसारिक बात के बाद मुक़दमे की बात, फिर भी बुढ़ा रोहिणी के रास्ते से भी नहीं गुज़रा। गोविन्दलाल रोहिणी की बात किसी तरह भी नहीं चला सके। कृष्णकान्त मन ही मन बहुत हँसने लगे। बुढ़ा बड़ा दुष्ट है।

लाचार, गोविन्दलाल लौटे जा रहे थे,—तब कृष्णकान्त ने प्रियतम भतीजे को पुकारते हुए लौटाल कर पूछा, “सुबह के वक्त जिस औरत को जामिन होकर तुम ले गये थे क्या उसने कुछ स्वीकार किया ?”

तब गोविन्दलाल ने रास्ता पाकर, जो जो कुछ रोहिणी ने कहा था, संक्षेप में कहा। वारुणी-पुष्करिणीवाली बातें छिपा रखीं। सुनकर कृष्णकान्त ने पूछा, “इस वक्त उसके लिए क्या करना तुम्हारा अभिप्राय है ?”

गोविन्दलाल लज्जित होकर बोले, “आपका जो अभिप्राय है, हम लोगों का भी वही अभिप्राय है।”

कृष्णकान्त ने मन ही मन हँस कर, चेहरे पर मुसकराहट का कोई भी लक्षण न दिखलाते हुए कहा, “हम उसकी बात पर विश्वास नहीं करते। उसका सर मुड़ा कर, मट्टा ढाल कर, गाँव के बाहर निकाल दें—क्या कहते हो ?”

गोविन्दलाल चुप हो रहे। तब दुष्ट बुड्ढे ने कहा—“और तुम लोग अगर ऐसा ही निश्चय करो कि उसका कोई दोष नहीं, तो उसे छोड़ दो।”

तब गोविन्दलाल ने साँस छोड़कर, बुड्ढे के हाथ से निष्कृति पाई।

चौदहवाँ परिच्छेद

रोहिणी गोविन्दलाल की अनुमति के अनुसार अपने चाचा के साथ विदेश चलने की बातचीत करने आई। चाचा से कुछ न कह कर घर के बीच में बैठ कर रोहिणी रोने लगी।

“यह हरिद्राग्राम छोड़कर मैं कहीं जा नहीं सकूँगी, बिना खाये मर जाऊँगी। मैं कलकत्ता जाने पर गोविन्दलाल को देख नहीं पाऊँगी, मैं नहीं जाऊँगी। यह हरिद्राग्राम मेरा स्वर्ग है, यहीं गोविन्दलाल का मकान है। यह हरिद्राग्राम ही मेरा श्मशान है, यहीं मैं जल कर मरूँगी। श्मशान में नहीं मर पाता, ऐसा भाग्य भी है ! मैं यदि यह हरिद्राग्राम छोड़ कर नहीं जाऊँगी तो मेरा कोई क्या कर सकता है ? कृष्णकान्त राय मेरा सर मुड़ा कर, मट्टा ढालकर, गाँव से निकाल देगा ? मैं फिर आऊँगी। गोविन्दलाल नाराज होगा ? हो तो हो—फिर भी मैं उसे देखूँगी। मेरी आँखें तो कोई काढ़ नहीं लेगा ? मैं नहीं जाऊँगी। मैं कलकत्ता नहीं जाऊँगी—कहीं भी नहीं जाऊँगी। जाऊँगी तो यम के यहाँ जाऊँगी। और कहीं नहीं।”

यह सिद्धान्त निश्चित कर, अभागिन उठकर, दरवाजा खोलकर फिर ‘पतंगवद्वह्निमुखं विविक्तुः—उसी गोविन्दलाल के पास चली, मन ही मन कहने लगी—“हे जगदीश्वर, हे दीनानाथ ! दुखियों के एकमात्र सहाय, मैं बड़ी दुःखिनी हूँ, बड़े दुःख में पड़ी हूँ—मेरी रक्षा करो—मेरे हृदय की यह असह्य प्रेम-वह्नि बुझा दो—मुझे अब और न जलाओ। जिसे देखने जा रही हूँ—उसे जितनी दफा देखूँगी, उतनी दफा—मुझे असह्य पीड़ा है—अनंत सुख है। मैं विधवा हूँ—मेरा धर्म गया—सुख गया—जान गई—रहा क्या प्रभो ? रक्खूँगी क्या प्रभो ? हे देवता ! हे दुर्गा !—हे काली !—हे जगन्नाथ ! मुझे सुमति दो—मेरे प्राण स्थिर करो—मैं यह कष्ट और सह नहीं सकती।”

फिर भी वह स्फीत, हृत, अपरिमित—प्रेमपरिपूर्ण हृदय न रुका। कभी सोचा, जहर खा लूँ; कभी सोचा, गोविन्दलाल के पैरों पड़कर, अंतःकरण को मुक्त करके कुल बातें कहूँ; कभी सोचा, भाग जाऊँ; कभी सोचा, वारुणी में डूब मरूँ। कभी सोचा, धर्म को तिलांजलि देकर, गोविन्दलाल को छीनकर किसी दूसरे देश भग

जाऊँ। रोहिणी रोती हुई गोविन्दलाल के पास फिर पहुँची। गोविन्दलाल ने पूछा, “क्यों कलकत्ता जाने का निश्चय हुआ ?

रो०—नहीं।

गो०—वह क्या ? अभी अभी मेरे पास स्वीकार कर गई थीं ?

रो०—जा नहीं सकूँगी।

गो०—कह नहीं सकता। विवश करने का मेरा कोई अधिकार नहीं—लेकिन जाने पर अच्छा होता।

रो०—किस तरह अच्छा होता ?

गोविन्दलाल ने सर झुका लिया। कोई बात कहनेवाले वे कौन हैं ?

रोहिणी तब आँसुओं को छिपकर पोछती हुई घर लौट गई। गोविन्दलाल अत्यन्त दुःखित होकर सोचने लगे। तब भौंरा नाचती हुई वहाँ आकर हाज़िर हुई; पूछा, “सोचते क्या हो ?”

गो०—तुम्हीं बतलाओ।

भ्र०—मेरा काला रूप।

गो०—ऐह !

भौंरा अत्यन्त कोप में आकर बोली, “वह क्या ? मुझे नहीं सोच रहे ? मेरे सिवा पृथ्वी में तुम्हारा दूसरा चाँद भी है ?”

गो०—है नहीं तो क्या ? सबमें सर्वमयी हो ! मैं दूसरे को सोच रहा हूँ। भ्रमर ने तब बाहों में गोविन्दलाल का गला लपेट कर, मुँह चूम कर, आदर से गीला कर, अधखुले, मधुर मधुर मुसकराहट मिले स्वर से पूछा, “दूसरे, किस आदमी को सोच रहे हो, बतलाओ।”

गो०—तुमसे कहने पर क्या होगा ?

भ्र०—बतलाओ तो !

गो०—तुम नाराज़ होगी।

भ्र०—हूँगी तो हो लूँगी, बतलाओ।

गो०—जाओ देख आओ, सबका खाना-पीना हुआ या नहीं ।

अ०—देखूँगी फिर—बतलाओ, कौन आदमी है ?

गो०—स्याही का काँटा—रोहिणी को सोच रहा था ।

अ०—क्यों रोहिणी को सोच रहे थे ?

गो०—यह मैं नहीं जानता ।

अ०—जानते हो, बतलाओ ।

गो०—आदमी क्या आदमी को नहीं सोचता ?

अ०—नहीं । जो जिसको प्यार करता है, वही उसको सोचता है । मैं तुम्हें सोचती हूँ—तुम मुझे सोचते हो ।

गो०—तो मैं रोहिणी को प्यार करता हूँ ।

अ०—भूठी बात—तुम मुझे प्यार करते हो—और किसी को तुम्हें प्यार करना नहीं चाहिए; क्यों रोहिणी को सोच रहे थे, बतलाओ ?

गो०—विधवा को मछली खानी चाहिए ?

अ०—नहीं ।

गो०—विधवा को मछली नहीं खानी चाहिए, फिर भी तारिणी की मा मछली क्यों खाती हैं ?

अ०—उसका जले मुँह, जो कुछ नहीं करना वही करती है ।

गो०—मेरा भी जले मुँह, जो कुछ नहीं करना वही करता हूँ । मैं रोहिणी को प्यार करता हूँ । चट से गोविन्दलाल के गाल पर भौरा ने एक ठोना मारा । बड़े गुस्से में आकर कहा, “मैं श्रीमती भौरा देवी हूँ, मेरे सामने भूठी बात ?”

गोविन्दलाल हार मान गये । भ्रमर के कंधे पर हाथ रख कर, प्रफुल्ल-नीलोत्पल-दलतुल्य मधुरिमामय उसके मुख-मंडल को अपने कर-पल्लव में लेकर मधुर अथच गम्भीर, कातर कंठ से गोविन्दलाल ने कहा, भूठी बात ही है भौरा ! मैं रोहिणी को नहीं प्यार करता । रोहिणी मुझे प्यार करती है ।”

तीव्र वेग से गोविन्दलाल के हाथ से अपना हाथ छुड़ाकर भौरा दूर जा खड़ी हुई। हाँफती हुई कहने लगी,—“अभागी—गाज-मारी बँदरिया मर जाय ! मर जाय ! मर जाय ! मर जाय ! मर जाय !”

गोविन्दलाल ने हँस कर कहा, “अभी से इतनी गालियाँ क्यों ? तुम्हारे सात राजाओं का धन एक मणि अभी तक तो उसने छीन नहीं लिया।”

भौरा कुछ अप्रतिभ होकर बोली, ऐसा क्यों—“ऐसा भी कर सकती है ?—लेकिन औरत ने तुम्हारे सामने कहा क्यों?”

गो०—ठीक, भौरा—उसका कहना उचित नहीं था—यही सोच रहा था। मैंने उसे यहाँ से उठ कर कलकत्ता में चलकर रहने के लिए कहा था—खर्च तक देना मंजूर किया था।

भौरा—इसके बाद ?

गो०—इसके बाद वह राजी नहीं हुई।

भौरा—अच्छा, क्या मैं उसे एक सलाह दे सकती हूँ ?

गो०—दे सकती हो, परन्तु वह सलाह मैं सुनूँगा।

भौरा—सुनो।

यह कह कर भौरा ने खीरी खीरी कह कर एक नौकरानी को पुकारा, तब चीरदा—उर्फ चीरमणि, उर्फ चीराब्धितनया उर्फ सिर्फ खीरी आकर खड़ी हुई। मोटे मोटे कड़े पैरों में, कमर में एक लड़ की मोटी करधनी—चितवन में हँसी भरी हुई।

भौरा ने कहा, “खीरी, रोहिणी मुँह-भौंसी के पास तू अभी एक दफा जा सकती है ?

खीरी ने कहा, “क्यों नहीं जा सकूँगी, क्या कहना होगा ?”

भौरा ने कहा, “मेरा नाम लेकर कह आ कि उन्होंने कहा है कि तुम मरो।”

“अभी जाती हूँ।” यह कह कर चीरदा उर्क खीरी कड़ा बजाती हुई चली। जाते वक़्त भौरा ने कह दिया, “क्या कहती है मुझसे कहे जाना।”

अच्छा कह कर खीरी चली गई। थोड़ी देर में ही लौट आकर कहा, “कह आई हूँ”।

भौरा—उसने क्या कहा ?

खीरी—उसने कहा, उपाय कह देने के लिए कहना।

भौरा—तो फिर जा, कह आ कि वारुणी तालाब में—शाम के वक़्त—गले में कलसी बाँध कर—समझी ?

खीरी—समझी।

खीरी गई, फिर लौट आई।

भौरा ने पूछा, “वारुणी तालाब की बात कही थी ?”

खीरी—कहा था।

भौरा—उसने क्या कहा ?

खीरी—कहा कि अच्छा।

गोविन्दलाल ने कहा, “छिः भौरा !”

भौरा ने कहा, सोचो नहीं। वह मरेगी नहीं, जो तुम्हें देखकर दीवानी हो गई है, वह क्या मर सकती है ?”



पन्द्रहवाँ परिच्छेद

दैनिक कार्य समाप्त करके प्रतिदिन के नियम के अनुसार गोविन्दलाल सूर्यास्त के समय वारुणी के किनारेवाले बगीचे में टहलने लगे। बगीचे में टहलना गोविन्दलाल का एक प्रधान सुख

था। कुल पेड़ों के नीचे दो-चार दफा घूमते थे, परन्तु हम उन पेड़ों की बात इस वक्त नहीं कहेंगे। वारुणी के किनारे बगीचे में, एक ऊँची पत्थर की वेदी थी, वेदी में एक सफ़ेद पत्थर की स्त्री-मूर्ति जड़ी हुई थी। स्त्री-मूर्ति अधट्ठीकी, आँखें नीची किये हुए, एक घड़े से अपने दोनों पैरों पर जैसे पानी ढाल रही हो—उसके चारों ओर खिलते रंग के छोटे छोटे सपुष्प वृक्ष मिट्टी के आधार में रखे हुए—जीरानियाँ, वर विना, यूकरिया, चन्द्रमल्लिका—नीचे उस वेदिका को घेर कर कामिनी, जूही, मल्लिका, गन्धराज आदि सुगन्ध थे, देशी फूलों की कतार खूशबू से आकाश को आमोदित कर रही है—उसी के बाद बहुविध उज्ज्वल, नील, पीत, रक्त, श्वेत नाना वर्णों के देशी, विलायती, नयन-रंजन-कारी जातियोंवाले पेड़ों की श्रेणी। वहीं बैठना गोविन्दलाल को अच्छा लगता था। चाँदनी रात में कभी कभी भ्रमर को बगीचा घुमाने के लिए लाकर वहीं बैठते थे। भ्रमर पाषाण-मयी स्त्री-मूर्ति को अर्द्धावृता देखकर उसे कलमुँही कह कर गाली देती थी—कभी कभी अपने ही अंचल से उसके अंग ढक देती थी—कभी कभी उत्तम वस्त्र घर से साफ़ लाकर उसे पहना जाती थी—कभी कभी उसके हाथ का घड़ा पकड़कर खींचतान करती थी।

वहीं जा गोविन्दलाल संध्या-समय बैठे हुए दर्पण की जैसी वारुणी की जल-शोभा देखने लगे। देखते देखते देखा, उस पुष्करिणी की चौड़ी पत्थर की बनी सीढ़ियों से रोहिणी काँख में घड़ा दबाये हुए उतर रही है। कुछ न हो तो चल सकता है, पानी न हो तो नहीं चलता। इस दुःख के दिन में भी रोहिणी पानी लेने आई है। पानी में उतर कर रोहिणी नहा सकती है—निगाह के अन्दर रहना उनके लिए अनुचित है, यह सोचकर वे वहाँ से हट गये।

बहुत देर तक गोविन्दलाल इधर-उधर टहले। अंत में सोचा, अब तक रोहिणी उठ गई होगी। यह सोच कर फिर उसी वेदिका के नीचे जल सींचती हुई पाषाण-सुन्दरी के पदप्रान्त में आकर बैठे।

फिर उसी वारुणी की शोभा देखने लगे । देखा, रोहिणी या कोई स्त्री या पुरुष कहीं नहीं । कहीं कोई नहीं, परन्तु उस पानी पर एक घड़ा तैर रहा है ।

किसका घड़ा ? एकाएक सन्देह उपस्थित हुआ—कोई पानी लेने के लिए आकर डूब तो नहीं गई ? रोहिणी अभी अभी पानी लेने आई थी—तब एकाएक सुबह की बात याद आई । याद आई कि भ्रमर ने रोहिणी को कहला भेजा था—वारुणी तालाब में—शाम के वक्रत घड़ा गले में बाँधकर । याद आया, रोहिणी ने जवाब में कहा था, “अच्छा ।”

गोविन्दलाल उसी वक्रत घाट पर आये, आखिरी सीढ़ी पर खड़े हुए तालाब के चारों तरफ देखने लगे । पानी शीशे की तरह स्वच्छ है । घाट के नीचे जल का तल तक दिखाई पड़ता है । देखा, स्वच्छ स्फटिक-मंडित स्वर्ण-प्रतिमा जैसी रोहिणी जल-तल में लेटी हुई है । पानी का अँधेरा तल आलोकमय कर रही है ।

—

सोलहवाँ परिच्छेद

गोविन्दलाल ने उसी वक्रत पानी में उतर कर, डूब कर, रोहिणी को उठा कर सीढ़ियों पर लेटाया । देखा, रोहिणी जी रही है इसमें सन्देह है, उसकी चेतना लुप्त है, साँस नहीं चल रही ।

बगीचे से गोविन्दलाल ने एक माली को पुकारा । माली की सहायता से रोहिणी को उठा कर, बगीचे के प्रमोदगृह में शुश्रूषा के लिए ले गये । जीवन में हो, मरण में हो, रोहिणी ने अन्त में गोविन्दलाल के गृह में प्रवेश किया । भ्रमर के सिवा और किसी स्त्री ने कभी उस उद्यान-गृह में प्रवेश नहीं किया ।

आँधी के बाद आये हुए पानी से धुले हुए चम्पक की तरह वह मृत नारी-देह पलंग पर लम्बमान होकर, प्रज्वलित दीप के प्रकाश में शोभा पाने लगी। घने लम्बे लटकते हुए गहरे काले केश पानी से सीधे हो गये हैं—उनसे पानी टपक रहा है, बादल से जैसे बूँदें टपक रही हों। आँखें मुँदी हुईं; परन्तु उन मुद्रित पद्मों पर दोनों भौहें पानी में भीग कर और भी काली शोभा से सुशोभित हैं। और वह ललाट—स्थिर, विस्तृत, लज्जा-भाव-विहीन, किसी अव्यक्त भाव से युक्त—गंड अभी भी उज्ज्वल, अधर अभी भी मधुमय, बन्धूक पुष्प को लजानेवाला। गोविन्दलाल की आँखों से आँसू टपकने लगे। कहा, “बलिहारी है ! क्यों विधाता ने तुम्हें इतना रूप देकर भेजा था, रूप दिया था तो सुखी क्यों नहीं किया ? इस तरह तुम क्यों चलीं ?”

इस सुन्दरी के आत्मघात के लिए वे स्वयं मूल कारण हैं—यह बात सोचने पर उनकी छाती फटने लगी।

अगर रोहिणी में जीवन है तो उसे बचाना होगा। पानी में डूबे हुए को किस तरह बचाते हैं, गोविन्दलाल यह जानते थे। पेट का पानी सहज ही निकाला जा सकता है। दो-चार दफ़े रोहिणी को उठा कर, बैठा कर, करवट लिवा कर, घुमा कर उन्होंने पानी निकाला, परन्तु इससे साँस नहीं चली। वही मुश्किल काम है।

गोविन्दलाल जानते थे, मुमूर्षु की दोनों बाहें पकड़ कर उठाने पर भीतर का वायु-कोष फूलता है, उस समय रोगी का मुँह फूँका जाता है; इसके बाद उठाते हुए दोनों बाहें धीरे धीरे उतारी जाती हैं, उतारने पर वायुकोष संकुचित होता है। तब वह फूँक से चलाई हवा अपने आप निकल आती है। इससे कृत्रिम श्वास-प्रश्वास चलाया जाता है। इस तरह बार बार करते करते वायुकोष का काम अपने आप होने लगता है। कृत्रिम श्वास-प्रश्वास चलाते चलाते सहज श्वास-प्रश्वास अपने आप चलने लगता है।

रोहिणी के लिए ऐसा ही करना होगा। दोनों हाथों से दोनों बाहें उठाकर उसके मुँह में फूँकना होगा। उस पके विम्बाफल को जीतनेवाला, अभी भी सुधा से परिपूर्ण, मदन-मद-उन्माद और ह्लाहल के आधार, मधुर लाल अधर पर अधर रख कर फूँकना होगा। क्या आकत है ? कौन फूँकेगा ?

गोविन्दलाल का सहायक एक उड़िया माली था। बगीचे के दूसरे नौकर इससे पहले घर चले गये थे। उन्होंने माली से कहा, “मैं इसके दोनों हाथ ऊपर उठाता हूँ, तू इसके मुँह में फूँक !”

मुँह में फूँकना ! सर्वनाश ! उस लाल अमृत भरे अधर पर माली के मुँह की फूँक ! “यह मुझसे नहीं हो सकता, मालिक !”

माली से मालिक अगर शालिग्राम शिला चबाने के लिए कहते तो मालिक की खातिर माली चबा भी सकता था, लेकिन उस चाँद-मुँह के लाल होठों में उस कटकी के मुँह की फूँक ! माली को पसीना आने लगा। उसने खुल कर कहा, “यह मुझसे नहीं हो सकता मालिक !”

माली ने ठीक कहा था। माली उन देव-दुर्लभ होठों में अगर एक दफा मुँह लगाकर फूँकता, इसके बाद अगर रोहिणी बच कर फिर वही होठ फुलाकर, जल का घड़ा लिये हुए, माली की तरफ देखकर घर जाती, तो उसे फुलवाड़ी का काम न करना होता। वह खंता, खुरपा, निरौनी, कैंची, फावड़ा वगैरह वारुणी के पानी में फेंक कर मंदरक की तरफ दौड़ लगाता, इसमें संदेह नहीं,—जान पड़ता है स्वर्ण रेखा के नीले जल में डूब मरता। माली ने इतना सोचा था या नहीं, हम नहीं कह सकते, परन्तु माली फूँकने के लिए राजी नहीं हुआ।

लाचार गोविन्दलाल ने उससे कहा, “तो तू दोनों हाथ इस तरह धीरे-धीरे उठाता रह, मैं फूँकता हूँ। इसके बाद धीरे-धीरे हाथ उतारना।” माली ने यह स्वीकार किया। उसने दोनों हाथ पकड़ कर

धीरे धीरे उठाया। गोविन्दलाल ने तब खिले हुए लाल कुसुम जैसे दोनों होठों को रख कर रोहिणी के मुँह में फूँका।

उस समय भ्रमर एक डंडा लेकर बिल्ली को मारने जा रही थी, बिल्ली को मारने के वक़्त वह डंडा बिल्ली को न लग कर भ्रमर के ही सर पर लगा।

माली ने रोहिणी की दोनों बाहें उतारीं, फिर उठाईं फिर गोविन्दलाल ने फूँका, फिर वैसा ही किया। बार बार वैसा ही करने लगे। दो-तीन घंटे तक करते रहे। रोहिणी की साँस चली। रोहिणी बची।

सत्रहवाँ परिच्छेद

रोहिणी का श्वास-प्रश्वास चलने लगा। गोविन्दलाल ने उसे दवा पिलाई। दवा बल बढ़ानेवाली थी—क्रमशः रोहिणी में बल-संचार होने लगा। रोहिणी ने आँखें खोल कर देखा—सजे हुए सुन्दर घर में मन्द-मन्द शीतल पवन झरोखे से आ रही है—एक तरफ़ स्फटिक के आधार पर स्निग्ध प्रदीप जल रहा है।—और एक तरफ़ हृदय के आधार पर जीवन-प्रदीप जल रहा है। इस तरफ़ रोहिणी गोविन्दलाल के हाथ की दी मृत-संजीवनी-सुरा पीती हुई मृत-संजीवित होने लगी—और दूसरी तरफ़ उनकी मृत-संजीवनी कथा कानों से पीती हुई मृत-संजीवित होने लगी—पहले साँस, फिर चेतन्त, फिर दृष्टि, फिर स्मृति, अंत में बात निकलने लगी। रोहिणी ने कहा, “मैं मर गई थी, मुझे किसने बचाया?” गोविन्दलाल ने कहा, “जो भी बचाये, तुमने जो रत्ना पाई है, यही बहुत है!”

रोहिणी ने कहा, “मुझे क्यों बचाया ? आपके साथ मेरी ऐसी कौन-सी दुश्मनी है, मृत्यु में भी आप प्रतिवादी हैं ?

गो०—तुम मरोगी क्यों ?

रो०—मरने का क्या मुझे अधिकार नहीं ?

गो०—पाप में किसी का अधिकार नहीं । आत्महत्या पाप है ।

रो०—मैं पाप-पुण्य नहीं जानती—मुझे किसी ने सिखलाया नहीं । मैं पाप-पुण्य नहीं मानती—किस पाप से मुझे यह दंड मिला ? पाप न करने पर भी अगर यह दुख है तो पाप करने से इससे ज्यादा होगा ? मैं मरूँगी ? इस दफा न हो तुम्हारी आँखों में पड़ी थी, इसलिए तुमने बचा लिया, दोबारा तुम्हारी आँखों में न पड़ूँ वह प्रयत्न करूँगी ।

गोविन्दलाल बड़े व्याकुल हुए; कहा, “तुम क्यों मरोगी ?”

“चिरकाल तक दंड दंड, पल पल, रात-दिन मरने की अपेक्षा एक दफा मरना अच्छा है ।”

गो०—किस बात की इतनी तकलीफ है ?

रो०—रात-दिन भयंकर प्यास लगी रहती है, दिल जल रहा है—सामने ही ठंडा पानी है, लेकिन इस जन्म में वह पानी छू नहीं सकती, आशा भी नहीं ।

गोविन्दलाल ने तब कहा, “अब इन सब बातों की जरूरत नहीं, चलो, तुम्हें घर छोड़ आवे ।”

रोहिणी ने कहा, “नहीं, मैं अकेली चली जाऊँगी ।”

गोविन्दलाल समझे कि एतराज क्यों है । गोविन्दलाल ने और कुछ नहीं कहा । रोहिणी अकेली गई ।

तब गोविन्दलाल उस एकान्त कमरे में एकाएक गर्द से भरी फर्श पर लोटते हुए रोने लगे । फर्श में मुँह छिपाकर बहते हुए आँसुओं से पुकारने लगे, हा नाथ ! नाथ ! तुम मेरी इस विपत्ति

में रक्षा करो ! तुम बल नहीं दोगे तो किसके बल से मैं इस विपत्ति से उद्धार पाऊँगा ? मैं मरूँगा—भ्रमर मरेगी । तुम इस चित्त में विराजमान रहना—मैं तुम्हारे बल से आत्म-जय करूँगा ।”

—

अठारहवाँ परिच्छेद

गोविन्दलाल घर लौट गये । भ्रमर ने पूछा, “आज इतनी रात तक बगीचे में क्यों थे ?”

गो०—क्यों पूछ रही हो ? और क्या मैं कभी नहीं रहता ?

भ्र०—रहते हो, लेकिन तुम्हारा मुँह देखने पर, तुम्हारा लहजा समझने पर मालूम होता है, आज कुछ हुआ है ।

गो०—क्या हुआ ?

भ्र०—क्या हुआ है, यह तुम नहीं बतलाओगे, तो मैं किस तरह समझूँगी ? मैं क्या वहाँ थी ?

गो०—क्यों, मुँह देखकर वह बात कह नहीं सकती ?

भ्र०—मजाक रक्खो—बात, अच्छी बात नहीं यह मैं मुँह देखकर कह सकती हूँ—मुझसे बतलाओ, मेरे प्राण बहुत व्याकुल हो रहे हैं ।

कहते कहते भ्रमर की आँखों से आँसू टपकने लगे । गोविन्दलाल ने भ्रमर की आँखों के आँसू पोंछ कर आदर करते हुए कहा, “एक दूसरे दिन बताऊँगा, भ्रमर, आज नहीं ।”

भ्र०—आज नहीं क्यों ?

गो०—तुम इस समय बालिका हो, यह बात बालिका को सुननी नहीं चाहिए ।

अ०—कल मैं बुढ़ी हो जाऊँगी ?

गो०—कल भी नहीं बतलाऊँगा—दो साल बाद बतलाऊँगा ।
अब और पूछो मत, भ्रमर ! भ्रमर ने लम्बी साँस छोड़ी । कहा,
“तो यही सही—दो साल बाद बतलाना । मेरी सुनने की बड़ी
साध थी—परन्तु तुमने अगर न कहा, तो मैं सुनूँगी किस तरह ?
मेरा मन न जाने कैसा हो रहा है ?”

न जाने कैसा एक भारी दुःख भौंरा के मन के भीतर अँधेरा
बढ़ाने लगा । जैसे वसंत का आकाश—बहुत सुन्दर, बहुत नीला,
बहुत उज्ज्वल होता है—कहीं भी कुछ नहीं—अकस्मात् एक बादल
उठकर, चारों तरफ छाकर अँधेरा कर डालता है—भौंरा को मालूम
दिया, जैसे उसकी छाती के भीतर वैसा ही एक बादल—उमड़कर
छा गया और चारों तरफ अँधेरा कर गया । भ्रमर की आँखों में
आँसू आने लगे । भ्रमर ने सोचा, “मैं अकारण रो रही हूँ—मैं
बड़ी बदमाश हो गई हूँ—मेरे पति नाराज होंगे ।”

अस्तु, भ्रमर रोती हुई बाहर निकल कर, एक किनारे बैठकर
पैर फैलाकर, अन्नदा-मंगल पढ़ने लगी । क्या अंड-बंड पढ़ा, यह
हम नहीं कह सकते, परन्तु हृदय के भीतर से वह काला मेघ किसी
तरह नहीं दूर हुआ ।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

गोविन्दलाल बाबू ताऊ जी के साथ ज़मींदारी की बातचीत
में लगे । बातचीत करते हुए किस गाँव की कैसी हालत है, पूछने
लगे । कृष्णकान्त गोविन्दलाल का यह विषयानुराग देखकर खुश

हुए, कहा, “तुम लोग अगर कुछ कुछ देखभाल करो तो बड़ा अच्छा हो। देखो, मैं और कितने दिन हूँ ? तुम लोग अभी से सब देख-सुन न रखोगे, तो मेरे मरने पर कुछ समझ न पाओगे। देखो, मैं बुढ़ा हूँ, और कहीं जा नहीं सकता। लेकिन बिना तहकीकात के सब गाँव बिगाड़ जायेंगे।”

गोविन्दलाल ने कहा, “आप भेजें तो मैं जाने के लिए तैयार हूँ। मेरी भी इच्छा है, कुल गाँव एक दफ़ा देख आऊँ।” कृष्णकान्त प्रसन्न हुए। कहा, “इससे मुझे बड़ा आनन्द है। फिलहाल बन्दरखाली में कुछ बिगाड़ है। नायब कह रहे हैं कि रिआया ने सत्याग्रह किया है, लगान नहीं देती। कहती है, हम लगान देते हैं, नायब वसूली की रसीद नहीं देते। तुम्हारी अगर इच्छा हो तो कहो, हम तुम्हें वहाँ भेजने का इन्तजाम करें।”

गोविन्दलाल सम्मत हुए, वे इसी लिए कृष्णकान्त के पास आये थे; उनकी यह भरी जवानी, मन की वृत्तियाँ उमड़े हुए समुद्र की तरंग की तरह प्रबल हैं, रूप की प्यास बड़ी प्रखर। भ्रमर से वह तृष्णा निवारित नहीं हुई। निदाघ-नील-मेघमाला जैसी रोहिणी अपने रूप से इस चातक के लोचन-पथ पर आ चुकी थी—प्रथम वर्षा के मेघ-दर्शन से चंचल मयूर की तरह गोविन्दलाल का मन रोहिणी का रूप देखकर नाच उठा था। गोविन्दलाल ने वह समझकर मन ही मन शपथ कर निश्चय किया, मरना है तो मरूँगा, लेकिन फिर भी भ्रमर की आँखों में अविश्वासी या कृतन्न नहीं हूँगा। उन्होंने मन ही मन निश्चय किया कि ज़मींदारी के काम में मन लगाकर रोहिणी को भूलूँगा—दूसरी जगह जाने पर ज़रूर भूल सकूँगा। इस तरह मन ही मन संकल्प कर वह ताऊ जी के पास वैषयिक आलोचना कर रहे थे। बन्दर-खाली की बात सुनकर आग्रह के साथ वहाँ जाने के लिए सहमत होगये।

भ्रमर ने सुना, मझले बाबू देहात जायँगे । भ्रमर ने पकड़ा, मैं भी जाऊँगी । बड़ा रोना-धोना मचा । लेकिन भ्रमर की सास ने किसी तरह भी जाने नहीं दिया । नाव सजाकर, नौकरों से विरे हुए, भ्रमर का मुँह चूम कर गोविन्दलाल दस दिन का रास्ता बन्दर-खाली चले ।

भ्रमर पहले ज़मीन पर लेंट कर रोई, इसके बाद उठ कर अन्नदा-मंगल फाड़ डाला,—पिंजरे की चिड़िया उड़ा दी, खिलौने सब पानी में फेंक दिये, टव के पौधे काट डाले, भोजन का अन्न पकानेवाली के बदन पर फेंक दिया,—नौकरानी का जूड़ा पकड़ कर, घुमा कर उसे गिरा दिया—ननद से लड़ाई की—इस तरह अनेक प्रकार के दौरात्म्य करके लेटी । लेटते हुए चहर ओढ़ कर फिर रोने लगी । इधर अनुकूल हवा से चलती हुई गोविन्दलाल की नाव नदी की तरंगों को चीर रही थी ।



बीसवाँ परिच्छेद

कुछ अच्छा नहीं लगता—भ्रमर अकेली है । भ्रमर ने बिस्तरा निकाल डाला—बड़ी गर्मी मालूम देती है । पल्लंग का पंगवा खेल डाला—हवा बड़ी गर्म है; नौकरानियों को फूल लाने से मना किया—फूलों में बड़े कीड़े हैं । ताश खेलना बंद किया—सहेलियों के पूछने पर कहने लगी, ताश खेलने से सास जी नाराज़ होती हैं । सुई, डोरा, ऊल, पैटर्न सब एक एक करके टोले की लड़कियों को दे दिये । पूछने पर कहने लगी कि आँखें बहुत जलती हैं । कपड़े मैले क्यों हैं, किसी के पूछने पर धोबी को गालियाँ देती है, अथच

धुले कपड़ों से घर भरा हुआ है, सिर के बालों के साथ कंघी का सम्बन्ध रहित हो आया—सूखी घास की तरह बाल हवा में फर-फर उड़ने लगे,—पूछने पर भ्रमर हँस कर बालों के हाथ से खींच कर जूड़े में खोंस लेती है, बस यहीं तक। भोजन के समय भ्रमर ने रोज बढ़ाना करना शुरू किया, “मैं नहीं खाऊँगी, मुझे ज्वर आया है।” सास ने कविराज को दिखलाकर, पाचन और गोलियों की व्यवस्था करके खीरी पर भार दिया, “बहू को ये दवायें खिलाना”। बहू ने खीरी के हाथ से पाचन और बड़ियाँ छीनकर झरोखे से बाहर फेंक दीं।

क्रमशः यहाँ तक बढ़ा-बढ़ी हुई कि खीरी को असह्य मात्रा दिया; खीरी ने कहा, “अच्छा बहूरानी जी, किसके लिए तुम ऐसा करती हो? जिनके लिए तुमने खाना और सोना छोड़ दिया है, वे क्या तुम्हारी बात एक दिन के लिए भी सोचते हैं? तुम मरती हो रोती हुई, और वे, मुमकिन, हुक्के की नली मुँह में लगाये; आँख मूँदे हुए रोहिणी का ध्यान कर रहे हैं।”

भ्रमर ने खीरी के एक तमाचा कस दिया।

भ्रमर का हाथ बहुत चलता था। परन्तु रोती रोती डर कर बोली, “तेरी जो इच्छा होगी, वही बकेगी तो तू मेरे पास से उठ जा।” खीरी ने कहा, “तो क्या चपत-घूँसों से लोगों का मुँह बन्द हो जायगा? तुम नाराज होगी, इसलिए हम डर से कुछ नहीं कहते। लेकिन बिना कड़े निस्तार भी नहीं। पाँची चांडालिन को बुलाकर पूछो—उस दिन उतनी रात को रोहिणी बाबू के बगीचे से आ रही थी या नहीं?”

चीरदा की किस्मत घुरी थी, इसलिए ऐसी बात सुबह-सुबह भ्रमर से उसने कही। भ्रमर उठ कर खड़ी हुई और चीरदा को चपत पर चपत मारी, घूँसे पर घूँसा मारा, उसे ढकेल कर गिरा दिया, उसके बाल पकड़ कर खींचे। अंत में खुद रोने लगी।

क्षीरदा बीच-बीच में भ्रमर से एक चपत या एक भापड़ पा जाती थी। कभी गुस्सा नहीं करती थी, लेकिन आज कुछ ज्यादा ही हुई, आज उसे कुछ गुस्सा आया। उसने कहा, “लेकिन बहुरानी जी, हमें मार डालने से क्या होगा?—तुम्हारे ही लिए हम कहती हैं। हम लोगों को बातें लेकर लोग तिल का ताड़ करते रहे, हमसे यह सहा नहीं जाता। अगर मेरी बात का विश्वास न हो, तो तुम पाँची को बुला कर पूछो।”

गुस्से से और दुःख से गंती हुई भ्रमर कहने लगी, “तुझे पूछना हो तो तू पूछ जाकर; मैं क्या तेरी तरह छछूँदर हूँ जो अपने पति की बात पाँची चाँडालिन से पूछूँ? तू इतनी बड़ी बात मुझसे कहती है? सास जी से मैं तुझे भाड़ू लगवाकर यहाँ से निकलवा दूँगी, तू मेरे सामने से दूर हो जा।”

तब सुबह का वक्त था। उत्तम, मध्यम प्रसाद पाकर क्षीरदा उर्फ खीरी गुस्से से गमगमाती हुई चली गई। इधर भ्रमर मुँह उठा कर, आँखों में आँसू भरे हुए, हाथ जोड़ कर मन ही मन गोविन्द-लाल को पुकार कर कहने लगी, “हे गुरो! शिक्षक, धर्मज्ञ, मेरे एक मात्र सत्यस्वरूप! तुमने क्या उस दिन यही बात मुझसे छिपाई थी?” उसके मन के भीतर जो मन है, हृदय में छिपाया हुआ जो स्थान कभी कोई नहीं देख पाता—जहाँ अपने को धोका देना नहीं, वहाँ भ्रमर ने देखा, पति पर उसे अविश्वास नहीं। अविश्वास नहीं होता। भ्रमर ने केवल एक दफा मन में सोचा, “वे अविश्वासी भी होंगे, तो ऐसा क्या दुख है? मेरे मरने पर ही सब चुक जायगा।” हिन्दू की लड़की मरना बड़ा सीधा समझती है।

इकीसवाँ परिच्छेद

अब खीरी नौकरानी ने सोचा कि यह बहुत बड़ा कलिकाल है—रत्ती भर की लड़की है, मेरी बात पर विश्वास नहीं करती। चीरदा के सरल अंतःकरण पर भ्रमर की गुस्सा-नाराज़गी का कुछ असर नहीं, वह भ्रमर का भला चाहती है, अमंगल नहीं; लेकिन भ्रमर ने जो अपने ठगे जाने की बात पर ध्यान नहीं दिया, यह उसके लिए असह्य हो गया। चीरदा तब अपनी चिकनी देह पर तेल लगाकर, रंगीन अँगौछे को कंधे पर डाल, बगल में कलसी दबा कर वारुणी के घाट में नहाने चली।

हरमणि महाराजिन बाबुओं के मकान की एक भोजनवाली थी, वह उस वक्त वारुणी के घाट से नहा कर लौट रही थी। पहले उससे मुलाकात हुई। हरमणि को देखकर चीरदा अपनी बात कहने लगी, “कहते हैं, जिनके लिए चोरी करें, वही कहते हैं चोर—अब बड़े आदमियों का काम और नहीं किया जायगा—कब किसका मिजाज कैसा रहता है, इसका ठिकाना नहीं।”

जरा भगड़े की बू पाकर, दाहने हाथ की निचाड़ी हुई धोती बायें हाथ में लेकर हरमणि ने पूछा, “क्यों री चीरदा ! माजरा क्या है ?”

चीरदा ने तब अपने मन का बोझ उतारा, कहा, “देखो तो महाराजिन, टोले की गाजमारी जुबन्टा औरतें बाबू के बगीचे में सैर करने जायँगी—हम नौकर-चाकर—क्या हम मालकिन से कह नहीं सकतीं ?”

हर०—यह कैसी बात है री ! टोले की लड़कियों में फिर कौन बाबू के बगीचे में सैर करने गई ?

खी०—गई और कौन ? वही दर्झमारी रोहिणी ।

हर०—जले मुँह ! रोहिणी की ऐसी दशा कितने दिन से हुई ? किस बाबू के बगीचे में री खीरी ?

चीरदा ने भभले बाबू का नाम लिया । तब दोनों एक दूसरी की तरफ देखकर, ज़रा रस की मुसकुराहट लेकर, जिसे जिस तरफ जाना था, उस तरफ गईं । कुछ दूर जाने पर ही चीरदा के साथ पड़ोस की राम की माँ से मुलाकात हुई । चीरदा ने उसे भी हँसी के फंदे में फाँस कर, खड़ी कर, रोहिणी के अत्याचार का परिचय दिया । फिर दोनों स्त्रियाँ हँसती हुई धूम-फिर कर देखती हुई अपने रास्ते चली गईं ।

इस तरह चीरदा ने रास्ते में राम की माँ, श्याम की माँ, हारी, तारी, पारी, जिसे भी देखा, उसी को अपने मर्म की पीड़ा का परिचय दिया और अंत में स्वस्थ शरीर से, प्रफुल्ल हृदय से वारुणी की स्फटिक-तुल्य वारि-राशि में नहाने लगी । इधर हरमणि, राम की माँ, श्याम की माँ, हारी, तारी, पारी आदि ने जहाँ जिसे देखा, उसे वहीं पकड़ कर सुना दिया कि रोहिणी अभागी भभले बाबू के बगीचे में सैर करने गई थी । एक में शून्य जोड़ा दस हुए, दस में शून्य जोड़ा सौ हुए, सौ में शून्य जोड़ा हजार हुए, जैसे सूर्य की किरण तेज होती है । खीरी ने पहले पहल भ्रमर से रोहिणी की बात उठाई थी । सूर्य के अस्त गमन से पहले घर घर में घोषित हो गया कि रोहिणी गोविन्दलाल की कृपा-पात्री है । केवल बगीचे की बात, अपरिमेय प्रणय की बातों, अपरिमेय अलंकारों की बातों और कितनी बातों में ही ढल गई । यहाँ मैं—हे रटना-कौशलमयी कलंक-कलित-कंठ-कुलकामिनियो !—अधम-सत्य-शासित पुरुष-लेखक ! आप लोगों से सविस्तर कह कर बढ़ाचढ़ी नहीं करना चाहता ।

क्रमशः भ्रमर के पास खबर आने लगी । पहले विनोदिनी ने आकर कहा, “सत्य क्या है री ?” भ्रमर कुछ सूखे मुँह से, दूटे हृदय से बोली, “क्या सत्य है, बीबी ?” बीबी ने तब पहले-पहल

धनुष जैसी दोनों भौंहों को कुछ समेट कर कटाक्ष से बिजली गिराती हुई, अपने लड़के को गोद पर चढ़ा कर कहा, “पूछती हूँ, रोहिणी-वाली बात ?”

अमर ने विनोदिनी से कुछ न कहकर उसके लड़के को खींच कर किसी बालिका-सुलभ कौशल से उसे रूलाया । विनोदिनी बालक को दूध पिलाती हुई अपने स्थान को गई ।

विनोदिनी के बाद सुरधुनी ने आकर कहा, “कहती हूँ मभली बहू, मभले बाबू को कोई दवा पिलाओ । हजार हो, तुम गोरी नहीं हो, मर्द का मन तो सिर्फ़ बातों से मिलता नहीं, कुछ रूप-गुण भी चाहिए । सो भई, रोहिणी की कैसी अच्छ है, कौन जाने ?”

अमर ने कहा, “रोहिणी की फिर अच्छ क्या है ?”

सुरधुनी ने मत्थे पर हाथ मार कर कहा, “अरी किस्मत ! इतने आदमियों ने सुना है—सिर्फ़ तूने ही नहीं सुना ? मभले बाबू ने रोहिणी को सात हजार रुपये के जेवर दिये हैं ।”

अमर के हाड़ तक जल गये । मन ही मन सुरधुनी को यम के हाथों सौंपा । खुल कर एक खिलौने का सर मरोड़ कर तोड़ती हुई, सुरधुनी से कहा, ‘यह मैं जानती हूँ, खाता देखा है । तेरे नाम पर चौदह हजार रुपये के जेवर लिखे हैं ।’

विनोदिनी और सुरधुनी के बाद रामी, वामी, श्यामी, कामिनी, भामिनी, शारदा, प्रमदा, सुखदा, वरदा, विमला, शीतला, निर्मला, मधु, विधु, निधु, तारिणी, निस्तारिणी, दीन-तारिणी, सुरबाला, गिरिबाला, ब्रजबाला, शैलबाला आदि अनेकों ने एक एक, दो दो, तीन तीन करके दुःखिनी, विरह-कातरा बालिका से आ-आकर कहा, कि तुम्हारे स्वामी रोहिणी से फैसे हैं । कोई युवती, कोई प्रौढ़ा, कोई बुढ़ी, कोई बालिका, सभी ने आकर कहा, कितना आश्चर्य है ! मभले बाबू का रूप देखकर कौन नहीं मोहती ? रोहिणी का रूप देखकर वे भी क्यों न मोहेंगे ? किसी ने आदर कर, किसी ने

चिढ़ा कर, किसी ने रस से, किसी ने गुस्से से, किसी ने सुख से, किसी ने दुःख से, किसी ने हँसकर, किसी ने रोकर भ्रमर से कहा, “भ्रमर, तुम्हारी किस्मत फूट गई।”

गाँव में भ्रमर सुखी थी। उसका सुख देखकर सब द्वेष करती थीं—काली-कलूटी को इतना सुख, अनन्त ऐश्वर्य,—देव-दुर्लभ स्वामी—लोक में निष्कलंक यश—अपराजिता का पद्म जैसा आदर ? इस पर उसकी चमेली की खुशालू ? गाँव की औरतों से इतना नहीं सहा जाता था। इसी लिए गुटों में, दलों में, कोई गोद में बच्चा लेकर, कोई बहन को साथ लेकर, कोई बाल बाँध कर, कोई बेणी बाँधती हुई, कोई खुले वालों से, संवाद देने के लिए आई—“भ्रमर, तुम्हारा सुख गया !” किसी के मन में भी नहीं आया कि भ्रमर पति-विरह-विधुरा है, निर्दोष दुःखिनी बालिका है।

भ्रमर अधिक और नहीं सह सकी। दरवाजा बंद कर कर्श पर लोटती हुई, धूलि-धूसर होकर रोने लगी। मन ही मन कहा, “हे संदेह-भंजन ! हे प्राणाधिक ! तुम्हीं मेरे संदेह, तुम्हीं मेरे विश्वास हो। आज किससे पूछूँ ? मुझे क्या संदेह हुआ है ? लोग सभी कह रहे हैं। सत्य न होगा तो क्यों कहेंगे ? तुम यहाँ नहीं, आज मेरा संदेह कौन दूर करेगा ? मेरा संदेह दूर नहीं हुआ—तो मैं मरती क्यों नहीं ? यह संदेह लेकर क्या बचा जाता है—मैं मरती क्यों नहीं ? लौट कर, प्राणेश्वर मुझे गालियाँ न देना कि भौंरा मुझसे कहे बिना मर गई।”

बाईसवाँ परिच्छेद

इस वक्त भ्रमर को ज्वाला है, रोहिणी को भी वही ज्वाला है; जब कि बात फैल गई है तो रोहिणी के कानों में भी क्यों नहीं

पहुँचेगी ? रोहिणी ने सुना, गाँव में शोहरत है कि गोविन्दलाल उसका गुलाम है,—सात हजार रुपये के गहने दिये हैं । बात किसने उठाई, यह रोहिणी ने नहीं सुना,—किसने उठाई, इसकी कोई तहक्रीकात नहीं की; एक साथ ही उसने सिद्धान्त किया कि यह जरूर भ्रमर की फैलाई बात है, नहीं तो इतनी जलन और किसे होगी । रोहिणी ने सोचा—भ्रमर ने मुझे बहुत जलाया है । उस रोज़ चोरी का अपवाद, आज अब यह अपवाद ? इस देश में अब नहीं रहूँगी, परन्तु छेड़ने से पहले एक दफ़ा भ्रमर के हाड़ तक जला दूँगी ।

रोहिणी न कर सके, ऐसा काम नहीं, यह उसके पहले के परिचय से मालूम किया जा चुका है । रोहिणी किसी पड़ोसिन के पास से एक बनारसी साड़ी और सोने के पानी चढ़े एक सूट गहने माँग लाई । शाम होने पर उनकी गठरी बाँध कर, साथ लेकर रामो के अंतःपुर में गई । जहाँ भ्रमर अकेली कर्श पर लेटी हुई रह-रह कर, रो रही थी, एक एक दफ़ा आँसू पोंछ कर धन्नियों की तरफ़ देखती हुई सोच रही थी, वहाँ पहुँच कर, गठरी रख कर, रोहिणी बैठी । भ्रमर विस्मित हुई—रोहिणी को देखकर विष की ज्वाला से उसके सर्वांग जल गये । भ्रमर सह नहीं सकी, बोली, “उस रोज़ रात को तुम ससुर जी के कमरे में चोरी करने आई थीं; आज रात को क्या मेरे घर में उसी मतलब से आई हो ?”

रोहिणी ने मन ही मन कहा, “धड़ से तुम्हारा सर जुदा करने आई हूँ ।” खुल कर कहा, “अब मुझे और चुराने की जरूरत नहीं रही; मैं रुपये की कंगाल नहीं । मभले बाबू की कृपा से मुझे अब खाने-पहनने का दुःख नहीं । लेकिन हाँ, आदमी जितना कहते हैं, उतना नहीं ।”

भ्रमर ने कहा, “तुम यहाँ से दूर हो जाओ ।”

रोहिणी इस बात की ओर कान न देकर कहने लगी, “आदमी जितनी दूर तक कहते हैं, उतनी दूर तक नहीं। लोग कहते हैं, मुझे सात हजार रुपये के गहने मिले हैं। लेकिन सिके तीन हजार रुपये के गहने और यह साड़ी मिली है। इसलिए तुम्हें दिखाने आई हूँ। सात हजार रुपये लोग क्यों कहते हैं?”

यह कह कर रोहिणी ने गठरी खोल कर बनारसी साड़ी और पानी चढ़े गहने भ्रमर को दिखाये। भ्रमर ने लात मार कर गहनों को चारों तरफ फैला दिया। रोहिणी ने कहा, “सोना लात से नहीं छुआ जाता।”

यह कह कर रोहिणी ने चुपचाप पानी-चढ़े गहने एक एक चुन कर फिर गठरी बाँधी, गठरी बाँध कर चुपचाप वहाँ से बाहर निकल गई।

—

तेईसवाँ परिच्छेद

रात पार होते न होते भ्रमर पति को पत्र लिखने बैठी। लिखना-पढ़ना गोविन्दलाल ने सिखलाया था, परन्तु भ्रमर लिखने-पढ़ने में उतनी मजबूत नहीं हुई थी; फूलों में, खिलौनों में, चिड़ियों में, पति में भ्रमर का मन था, लिखने-पढ़ने या घर के काम में उतना नहीं। कागज लेकर लिखने के लिए बैठी, पर एक दफा पोंछती, एक दफा काटती, एक दफा कागज बदल कर फिर पोंछती, फिर काटती। अंत में डाल रखवा। दो-तीन दिन में भी एक पत्र समाप्त नहीं हुआ था, परन्तु आज वैसा कुछ नहीं हुआ। टेढ़ी, तिरछी लकीरों से जो कुछ भी कलम की नोक से निकला, आज वही भ्रमर को मंजूर हुआ। “म” जितने आये “स” की तरह के हुए—“स” “म” की तरह

के—“फ” “क” की तरह “क” “फ” की तरह के “प” “व” की तरह के, छोटी की जगह बड़ी मात्रा, बड़ी की जगह छोटी, युक्ताक्षर अलग अलग, किसी अक्षर का विलकुल लोप—भ्रमर ने कुछ खयाल नहीं किया। भ्रमर ने आज बंटे भर में लम्बा पत्र पति को लिख डाला। कट-कुट न थी, ऐसा नहीं। हम पत्र का कुछ परिचय देते हैं।

भ्रमर लिख रही है—“सेविका श्री भौरा” (इसके बाद “भौरा” काट कर “भ्रमर” बना दिया) “दास्याः” (पहले दास्मा लिखा, फिर काट कर दास्य लिखा—उसे काट कर “दास्योः” लिखा—“दास्याः” नहीं बन पड़ा) “प्रणामाः” (“प्र” लिखते हुए पहले “त्र” लिखा, इसके बाद “त्र” बनाया, अंत में प्र) “निवेदनञ्च” (पहले “निवेदनच” लिखा, इसके बाद “निवेदनञ्च”) “विशेष” (विशेषः नहीं बन पड़ा)।

खत लिखने की यह प्रणाली रही। जो कुछ लिखा था, उसका वर्ण शुद्ध करके, भाषा के संशोधन के साथ हम नीचे लिख रहे हैं—

“उस दिन रात को बगीचे में तुम्हें देर क्यों हुई थी, यह मुझ से खोल कर तुमने नहीं कहा, दो साल के बाद कहूँगा कहा था, परन्तु मैंने भाष्य-दोष से पहले ही सुना। सुना क्यों, देखा भी। तुमने रोहिणी को जो गहने दिये हैं, उसने खुद मुझे दिखाये हैं।

“जान पड़ता है, तुम मन में जानते हो कि तुम पर मेरी अचल भक्ति है—तुम पर मेरा अनंत विश्वास है। मैं भी ऐसा ही जानती थी; परन्तु अब वैसी बात नहीं। जितने दिन तक तुम भक्ति के योग्य हो, उतने ही दिन तक मेरी भक्ति है। जितने दिन तक तुम विश्वासी हो, उतने ही दिन तक मेरा विश्वास है। अब तुम पर मेरी भक्ति नहीं, विश्वास भी नहीं। तुम्हारे दर्शन से अब मुझे सुख नहीं। तुम जब घर आओगे, मुझे अनुग्रह करके जबर देना—मैं रो-पीट कर हो या जिस तरह हो, नैहर चली जाऊँगी।”

गोविन्दलाल को यथासमय पत्र मिला। उनके सर पर वज्र गिरा। सिर्फ दस्तखत से और वर्णों की अशुद्धि देखकर उन्हें विश्वास हो गया कि यह पत्र भ्रमर का लिखा हुआ है। फिर भी मन में बहुत बातों का उन्होंने संदेह किया, भ्रमर उन्हें ऐसा पत्र लिख सकती है, यह कभी उन्होंने विश्वास नहीं किया।

उसी डाक से और भी कई पत्र आ गये। गोविन्दलाल ने पहले भ्रमर का ही पत्र खोला था ? पढ़ कर स्तम्भित की तरह बहुत देर तक निश्चेष्ट रहे; इसके बाद दूसरे पत्र अनमने होकर पढ़ने लगे उनमें ब्रह्मानन्द घोष का एक पत्र था।

कविता-प्रिय ब्रह्मानन्द ने लिखा है—

“भाई जी ! राजा राजा में लड़ाई होती है—साधारण की जान जाती है। बहू जी तुम्हारे ऊपर सब तरह का अत्याचार कर सकती हैं। परन्तु हम दुखी प्राणी हैं, हम पर यह अत्याचार क्यों ? उन्होंने यह बात फैलाई है कि तुमने रांदिणी को सात हजार रुपये के गहने दिये हैं। और भी कितनी ओछी बातें फैली हैं, तुम्हें लिखते लज्जा लगती है—कुछ हो, तुमसे मेरी करियाद है—तुम इसका यथोचित प्रबन्ध करो। नहीं तो मैं यहाँ का रहना छोड़ दूँगा। इति।”

गोविन्दलाल और विस्मित हुए। भ्रमर ने बात फैलाई है ? मर्म कुछ समझ न पाकर गोविन्दलाल ने उसी दिन हुस्म जारी कर दिया कि यहाँ की जलवायु मेरे लिए असह्य हो रही है, मैं कल ही घर जा रहा हूँ, नाव तैयार करो।

दूसरे दिन नाव पर चढ़ कर उतरे मन से गोविन्दलाल ने घर की यात्रा की।

चौबीसवाँ परिच्छेद

जिसे प्यार करो, उसे आँखों की आड़ न करो। अगर प्रेम का बंधन दृढ़ रखना चाहते हो, तो डोर छोटी करो। वांछित को आँखों पर रक्खो; अदर्शन से कितना विषमय फल फलता है ! जिसे विदा देते वक्त कितना रोये हो, सोचा है, शायद उसे छोड़ने पर दिन नहीं कटेगा; कुछ साल बाद जब फिर मुलाकात हुई है, तब सिर्फ़ तुमने पूछा है,—“अच्छे तो हो ?” शायद उसने घूम कर बात नहीं की—कोई बात ही नहीं हुई—आन्तरिक विच्छेद हो गया। शायद उसने मान कर फिर मुलाकात ही नहीं की। एक दफ़ा आँख की आँट होने पर ही, जो कुछ था, वह फिर नहीं रहा। जो कुछ गया, वह फिर नहीं आया। जो कुछ टूटा, वह फिर नहीं जुड़ा। मुक्त वेणी के बाद युक्त वेणी कहाँ देखी।

भ्रमर ने गोविन्दलाल को विदेश जाने देकर अन्धा नहीं किया। इस समय दोनों एक जगह रहते तो मन में मलिनता शायद न पैदा होती, वाचनिक विवाद से असली बात जाहिर हो जाती, भ्रमर को इतना भ्रम न होता, इतना गुस्सा न आता, गुस्से से यह सर्वनाश न होता। गोविन्दलाल स्वदेश को चले, तो नायब ने कृष्णकान्त के पास एक इत्तला भेज दी कि मभले बाबू आज सुबह घर को खाना हो रहे हैं। वह खत डाक से आया। नाव से डाक पहले आती है। गोविन्दलाल के गाँव पहुँचने के चार-पाँच दिन पहले कृष्णकान्त के पास नायब का खत आया। भ्रमर ने सुना, पति आ रहे हैं। भ्रमर उसी वक्त फिर खत लिखने बैठी। तब चार-पाँच काराज़ स्याही से भर कर फाड़ डाले, दो-चार घंटे में एक पत्र लिखकर तैयार किया। इस पत्र में माता को लिखा, “मेरी तबीयत बहुत नासाज़ है, तुम लोग अगर एक दफ़ा मुझे ले जाओ तो अच्छी होकर लौटूँगी। देर न करना, पीड़ा बढ़ने

पर फिर अच्छी न हूँगी। हो सके तो कल ही आदमी भेजना। यहाँ पीड़ा की बात कहना मत।” यह पत्र लिख कर एकान्त में खीरी नौकरानी से आदमी ठीक कर भ्रमर ने नैहर भेज दिया।

अगर माँ न होकर कोई और होती, तो भ्रमर का पत्र पढ़कर ही समझ लेती कि इसके भीतर कुछ धोखा है। परन्तु माँ लड़की की पीड़ा की बात सुन कर एक बार ही व्याकुल हो गई। भ्रमर की सास को एक लाख गालियाँ सुना कर, पति को भी कुछ भला-बुरा कहा, और रो-धोकर निश्चय किया कि अगले दिन पालकी और कहार लेकर नौकर-नौकरानियाँ भ्रमर को लेने जायँगी, भ्रमर के पिता ने कृष्णकान्त को चिट्ठी लिखी। चालाकी से भ्रमर की पीड़ा का कोई उल्लेख न कर उन्होंने लिखा, “भ्रमर की माता की तबीयत बहुत खराब है, भ्रमर को एक दफा देखने के लिए भेज दीजिए।” दास-दासियों को वैसी ही सीख दी। कृष्णकान्त बड़ी विपत्ति में पड़े।

इधर गोविन्दलाल आ रहे हैं, इस वक्त भ्रमर को नैहर भेजना उचित नहीं। इधर भ्रमर की माता पीड़ित हैं, न भेजने पर भी नहीं बनता। कुल बातें सोच कर चार रोज़ के करार पर भ्रमर को भेज दिया। चौथे रोज़ गोविन्दलाल आ पहुँचे। सुना कि भ्रमर पिता के यहाँ गई है, आज उसे बुलाने के लिए पालकी भेजी जायगी। गोविन्दलाल सब कुछ समझ गये। मन ही मन बड़ा अभिमान हुआ, मन ही मन सोचा, “इतना अविश्वास? बिना समझे, बिना पूछे मुझे छोड़ कर चली गई? मैं अब उस भ्रमर का मुँह नहीं देखूँगा। जिसके भ्रमर नहीं, क्या वह जी ही नहीं रहा?”

यह सोच कर गोविन्दलाल ने भ्रमर को बुलाने के लिए आदमी भेजने से माँ को मना किया। क्यों मना किया—इसका यहाँ कुछ

भी खुलासा नहीं किया गया। उनकी सम्मति वैसी होने पर कृष्णकान्त ने बहू को लाने के लिए फिर कोई उद्योग नहीं किया।

पच्चीसवाँ परिच्छेद

इस तरह चार रोज़ बीते। अमर को कोई लेने नहीं आया। अमर भी नहीं आई। गोविन्दलाल ने सोचा, अमर की स्पर्धा बढ़ गई है, उसे कुछ रुलाना है। सोचा, अमर ने बड़ा अविचार किया है, कुछ रुलाऊँगा। एक दफ़ा खाली घर देखकर खुद भी कुछ रोये। अमर का अविश्वास सोचकर एक एक दफ़ा कुछ सिसकियाँ लीं। अमर को नाराज़गी है, यह सोचकर रुलाई आई। फिर आँसू पोंछ कर नाराज़ हुए। नाराज़ होकर अमर को भूलने की कोशिश की। भूलने की शक्ति नहीं; सुख जाता है, स्मृति नहीं जाती, क्षत अच्छा हो जाता है, दाग अच्छा नहीं होता; आदमी जाता है, नाम रहता है।

अंत में दुर्बुद्धि आई, गोविन्दलाल ने सोचा, अमर को भूलने का सबसे अच्छा तरीका है, रोहिणी की चिन्ता। रोहिणी की अलौकिक रूप-प्रभा एक दिन के लिए भी गोविन्दलाल के हृदय को नहीं छोड़ी। गोविन्दलाल बलात् उसे स्थान नहीं देते थे, मगर वह छोड़ती नहीं थी। उपन्यास में कहा जाता है किसी घर में भूतों का दौगात्म्य होता है, भूत दिन-रात भाँकते रहते हैं, परन्तु ओभा उसे खदेड़ देते हैं। रोहिणी प्रेतिनी उसी तरह दिन-रात गोविन्दलाल के हृदय-मंदिर में भाँकती रहती है, गोविन्दलाल उसे खदेड़ देते हैं। जैसे पानी के नीचे चन्द्र-सूर्य की छाया हो, चन्द्र-सूर्य नहीं; उसी तरह गोविन्दलाल के हृदय में रोहिणी की छाया है, रोहिणी

नहीं। गोविन्दलाल ने सोचा, अगर भ्रमर को किलहाल भूलना होगा, तो रोहिणी की बात ही सोचूँ—नहीं तो यह दुख भुलाया नहीं जायगा। बड़े से बड़े चिकित्सक छोटों से रोगों के उपशम के लिए उल्कट विष के प्रयोग में प्रवृत्त होते हैं। गोविन्दलाल अपनी इच्छा से पहले ही अपने अनिष्ट-साधन में प्रवृत्त हुए।

रोहिणी की बात पहले केवल स्मृति थी, बाद को दुःख में परिणत हुई, दुख से वासना में, गोविन्दलाल वारुणी के तट पर फूलों के पेड़ों से विरे मंडप में बैठकर उस वासना के लिए अनुताप कर रहे थे। वर्षाकाल था। आकाश मेंघों से घिरा हुआ। बादल विरे हुए—पानी कभी कभी जोर-शोर से गिराते हुए—कभी मृदु मधुर होते हुए। लेकिन वृष्टि का विराम नहीं। शाम पार होने को है, परन्तु प्रायः हुई रात का अँधेरा, फिर बादल का अंधकार, वारुणी का घाट साफ नहीं दिखलाई पड़ता। गोविन्दलाल ने अस्पष्टरूप से देखा कि एक स्त्री उतर रही है। रोहिणी का वह सीढ़ियों से उतरना गोविन्दलाल को याद आया। वारुणी का घाट पिछलहर डेगया है—कहीं पैर किसल जाय, तो औरत पानी में गिरकर विपत्ति में न पड़े, यह सोचकर गोविन्दलाल कुछ हड़बड़ाये। पुष्प-मंडप को पकड़कर कहा, “तुम कौन हो जी ! आज घाट में न उतरना—बड़ा पिछलहर है, गिर जाओगी।”

औरत उनकी बात साफ समझ गई थी या नहीं, मैं नहीं कह सकता। पानी बरस रहा था—शायद वूँदों की आवाज से वह अच्छी तरह सुन नहीं पाई। उसने बगल का बड़ा घाट पर उतारा। फिर सीढ़ियाँ चढ़ने लगी। धीरे धीरे गोविन्दलाल के बगीचे की तरफ चली। बगीचे का दरवाजा खोल कर भीतर गई। गोविन्दलाल के पास मंडप के अन्दर जाकर खड़ी हुई। गोविन्दलाल ने देखा, सामने रोहिणी है।

गोविन्दलाल ने पूछा,—“भीगती हुई यहाँ क्यों, रोहिणी ?”

रो०—आपने क्या मुझे बुलाया है ?

गो०—बुलाया नहीं । घाट बड़ा पिछलहर है, उतरने से मना कर रहा था । खड़ी भीगती क्यों हो ?

रोहिणी का साहस बढ़ा—वह मंडप पर चढ़ी । गोविन्दलाल ने कहा, “लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे ?”

रो०—जो कुछ कहना है, वह कह रहे हैं । वह बात आपसे एक रोज़ कहूँगी, इसके लिए बहुत दिन से कोशिश कर रही हूँ ।

गो०—उस सम्बन्ध में मुझे भी कुछ बातें पूछनी हैं । किसने ऐसी बात फैलाई ? तुम लोग भ्रमर को दोष क्यों देती हो ?

रो०—सब कह रही हूँ । परन्तु क्या यहाँ खड़ी खड़ी कहूँ ?

गो०—नहीं, मेरे साथ आओ । यह कह कर गोविन्दलाल रोहिणी को बुला कर बगीचे के बैठकखाने में ले गये ।

वहाँ दोनों की जो बातचीत हुई, उसका परिचय देने की हमारी प्रवृत्ति नहीं । केवल इतना ही कहेंगे कि उस रात रोहिणी घर जाने से पहले समझ गई कि गोविन्दलाल उसके रूप से मुग्ध हैं ।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

रूप से मुग्ध ?—कौन किसके नहीं ? मैं इस हरे और नीले रंग से चित्रित तितली के रूप से मुग्ध हूँ, तुम फूली हुई कामिनी की डाल के रूप से मुग्ध हो । इसमें दोष क्या है ? रूप तो मोह के लिए ही हुआ था ।

गोविन्दलाल ने पहले ऐसा सोचा । पाप के पहले सोपान पर पदार्पण कर पुण्यात्मा भी ऐसा ही सोचते हैं । परन्तु जैसा बाहरी

संसार में मध्याकर्षण से, वैसे ही अन्तर्जगत् में पाप के आकर्षण से, हर कदम पर गिरनेवाले और गिरते जाते हैं। गोविन्दलाल का अधःपतन बड़ा द्रुत हुआ—क्योंकि रूप की प्यास उनके हृदय को बहुत दिन से सुखा रही थी। इस सिकं रो सकते हैं, अधःपतन की वर्णना नहीं कर सकते।

क्रमशः कृष्णकान्त के कानों में रोहिणी और गोविन्दलाल के नाम इकट्ठे पहुँचे। कृष्णकान्त दुःखित हुए। गोविन्दलाल के चरित्र पर कुछ ऐसा कलंक लग जाने पर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उनकी इच्छा हुई, वे गोविन्दलाल से कुछ कहें। लेकिन इधर कुछ बीमार पड़ गये थे, शयनागार छोड़ नहीं सकते थे। वहाँ गोविन्दलाल उन्हें रोज़ देखने जाते थे, लेकिन वे सदा सेवकों से घिरे रहते थे। गोविन्दलाल से सबके सामने कुछ कह नहीं सकते थे। लेकिन पीड़ा बढ़ती जा रही थी। एकाएक कृष्णकान्त के मन में आया कि शायद चित्रगुप्त का हिसाब पूरा हो आया है; इस जीवन का सागर-संगम शायद सामने है। और देर करने पर शायद कहना न हो सके। एक दिन गोविन्दलाल बहुत रात बीतने पर बगीचे से लौटे। उस दिन कृष्णकान्त मन की बात खोल कर कहेंगे, सोचा। गोविन्दलाल देखने के लिए आये। पास के लोगों को कृष्णकान्त ने उठ जाने के लिए कहा। पास के लोग उठ गये। तब गोविन्दलाल ने कुछ अप्रतिभ होकर पूछा, “आज आप कैसे हैं?”

कृष्णकान्त ने क्षीण स्वर से कहा, “आज बहुत अच्छा नहीं। तुम्हें इतनी रात क्यों हुई?” गोविन्दलाल ने उस बात का कोई उत्तर न देकर कृष्णकान्त का हाथ अपने हाथ में लेकर नाड़ी देखी। अकस्मात् गोविन्दलाल का मुँह सूख गया। कृष्णकान्त के जीवन का प्रवाह बहुत धीरे धीरे बह रहा है। गोविन्दलाल ने केवल कहा, “आ रहा हूँ।” कृष्णकान्त के शयनगृह से निकल कर गोविन्दलाल सीधे वैद्य के घर जा पहुँचे। वैद्य विस्मित हुए। गोविन्दलाल ने

कहा, “महाशय, जल्दी दवा लेकर चलिए, ताऊ जी की हालत बहुत अच्छी नहीं मालूम देती।” वैद्य हड़बड़ाये हुए बड़ियों का एक भेद लेकर उनके साथ दौड़े—कृष्णकान्त के कमरे में गोविन्दलाल वैद्य के साथ हाज़िर हुए, कृष्णकान्त कुछ डरे, वैद्य ने नाड़ी देखी, कृष्णकान्त ने पूछा, “क्या वैसी कोई शंका हो रही है?” वैद्य ने कहा, “मनुष्य के शरीर में शंका कब नहीं रहती?”

कृष्णकान्त समझे। पूछा, “मीयाद कब तक है?”

वैद्य ने कहा, “दवा खिलाकर कह सकूँगा।” वैद्य ने दवा घोंट कर तैयार की, कृष्णकान्त के पास पहुँचे, कृष्णकान्त ने खरल हाथ में लेकर एक दफ़ा सर से छुआया इसके बाद कुल दवा पीकदान में उलट दी।

वैद्य का चेहरा उतर गया। कृष्णकान्त ने देखकर कहा, “उदास न हूँजिएगा। दवा खाकर बचने की उम्र मेरी नहीं। दवा की अपेक्षा ईश्वर का नाम लेने से मेरा अधिक उपकार है। तुम लोग ईश्वर का नाम लो, मैं सुनूँ।”

कृष्णकान्त के सिवाय किसी ने ईश्वर का नाम नहीं लिया। परन्तु लोग घबराये, डरे और ताज्जुब में आये। कृष्णकान्त अकेले निडर हैं। कृष्णकान्त ने गोविन्दलाल से कहा, “मेरे सिरहाने दराज की कुंजी है, निकालो।” गोविन्दलाल ने तफ़िये के नीचे से कुंजी निकाली।

कृष्णकान्त ने कहा, “दराज खोल कर मेरा विल निकालो।”

गोविन्दलाल ने दराज खोल कर विल निकाला।

कृष्णकान्त ने कहा, “मेरे कर्मचारियों, मुहरिरीं और गाँव के दस भले आदमियों को बुलाओ।”

उसी वक्त नायब, मुहरिरी, गुमास्ते, कारकुन,—चट्टोपाध्याय, मुखोपाध्याय, वन्गोपाध्याय, भट्टाचार्य, घोष, बोस, मित्र, दत्त वगैरह से घर भर गया।

कृष्णकान्त ने एक मुहरिरे को आज्ञा दी, “मेरा विल पढ़ो।”

मुहरिरे ने पढ़ कर समाप्त किया।

कृष्णकान्त ने कहा, “यह विल फाड़ डालना होगा। नया विल लिखो।”

मुहरिरे ने पूछा, “किस तरह लिखना होगा?”

कृष्णकान्त ने कहा, “जैसा है, सब वैसा ही, सिर्फ”—

“मिर्क, क्या?”

“मिर्क गोविन्दलाल का नाम काट कर उसकी जगह मेरी भ्रातृपुत्रवधू भ्रमर का नाम लिखो। भ्रमर के न रहने पर गोविन्दलाल वह आधा हिस्सा पायेगा, लिखो।”

सब आदमी निस्तब्ध रह गये। किसी ने कोई बात नहीं कही। मुहरिरे ने गोविन्दलाल के मुँह की तरफ देखा, गोविन्दलाल ने इशारा किया, “लिखो।”

मुहरिरे लिखने लगा। लिखना ख़तम होने पर कृष्णकान्त ने दस्तख़त किये। गवाहों ने स्वाक्षर किये। गोविन्दलाल ने अपनी तरफ से उपयाचक लेकर, विल लेकर उसमें गवाह के रूप स्वाक्षर किया।

विल में गोविन्दलाल की एक कौड़ी भी नहीं—भ्रमर का आधा हिस्सा।

उस रात राम नाम करते हुए तुलसी-मंच के नीचे कृष्णकान्त का परलोक-गमन हुआ।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद

कृष्णकान्त की मृत्यु के संवाद से देश के आदमी चोभ प्रकट करने लगे। किसी ने कहा, “एक इन्द्रपात हो गया” किसी ने कहा,

“एक दिग्पाल मरा” किसी ने कहा, “पर्वत का शृङ्ग टूट गया” । कृष्णकान्त विषयी आदमी थे, परन्तु सच्चे थे और दरिद्र, ब्राह्मण, पंडितों को यथेष्ट दान दिया करते थे, इसलिए बहुतों को उनके न रहने पर शोक हुआ ।

सबसे ज्यादा भ्रमर को । अब लाचारी दरजा भ्रमर को लाना पड़ा । कृष्णकान्त की मृत्यु के दूसरे ही दिन गोविन्दलाल की माता ने अपनी तरफ से पुत्र-वधू को तुला भेजा । भ्रमर ने आकर कृष्णकान्त के लिए रोना शुरू किया । गोविन्दलाल के साथ भ्रमर की पहली मुलाकात में रोहिणी की बात पर किसी महाप्रलय के घटने की सम्भावना थी या नहीं हम ठीक तौर से नहीं कह सकते; परन्तु कृष्णकान्त के शोक में वे बातें इस वक्त दब गईं । भ्रमर के साथ गोविन्दलाल की जब पहली मुलाकात हुई, तब भ्रमर ताऊ-ससुर के लिए रो रही थी, गोविन्दलाल को देखकर और भी रोने लगी ।

अस्तु, जिस बड़े हंगामा की शंका थी, वह इस शोर-गुल में दब गई । दोनों ने समझा, दोनोंने मन में निश्चय किया कि जब पहली मुलाकात में कोई बात-चीत नहीं छिड़ी, तब और गुल-गपाड़ा मचाने की जरूरत नहीं—गुल-गपाड़े का यह वक्त नहीं । भले भले कृष्णकान्त का श्राद्ध समाप्त हो जाय—इसके बाद जिसके मन में जो होगा, हो रहेगा । यह सोच कर गोविन्दलाल ने एक रोज़ उपयुक्त समय समझ कर भ्रमर से कह रक्खा, “भ्रमर ! तुम्हारे साथ मेरी कुछ बातें हैं, बातें कहने में मेरी छाती फट जायगी । पिता की मृत्यु से बढ़ कर जो चोभ है, उससे इस समय मैं व्याकुल हूँ । इस समय वे बातें तुमसे नहीं कर सकता । श्राद्ध के बाद जो कुछ कहना है, कहूँगा । इस बीच में उन बातों के उठाने की कोई जरूरत नहीं ।”

बड़े कष्ट से आँसू रोक कर भ्रमर ने बालपन से परिचित देवता, काली, दुर्गा, शिव, हरि का स्मरण कर कहा, “मुझे भी कुछ कहना है । तुम्हें जब अवकाश होगा, पूछूँगी ।

और कोई बात नहीं हुई। दिन जिस तरह कटता था उसी तरह कटने लगा; देखते देखते वैसा ही दिन कटता रहा; दास, दासी, गृहिणी, पुर की स्त्रियाँ, आत्मीय-स्वजन, कोई नहीं समझ पाया कि आकाश में बादल चढ़ रहे हैं, फूलों में कीड़े घुस गये हैं, चारु-प्रेम-प्रतिमा में धुन लग गये हैं। परन्तु धुन लग गये हैं, यह सही है। जो कुछ था, वह अब नहीं। जो हँसी पहले थी, वह हँसी अब नहीं रही। क्या भ्रमर हँसती नहीं? क्या गोविन्दलाल हँसते नहीं? हँसते हैं, परन्तु वह हँसी अब नहीं रही। आँखों से आँखें मिलते जो हँसी पहले उमड़ पड़ती है, वह हँसी अब नहीं रही। जो हँसी अध खुली हँसी है अधमुँदी प्रीति की, वह हँसी अब नहीं रही; जो हँसी आधे में कहती है, संसार सुखमय है, आधे में कहती है, सुख की अकांक्षा नहीं पूरी भई—वह हँसी अब नहीं रही। वह चितवन नहीं रही—जो चितवन देखकर भ्रमर सोचती थी, “कितना रूप है” जो चितवन देखकर गोविन्दलाल सोचते थे, “कितना गुण है” वह चितवन अब नहीं रही; जिस चितवन में गोविन्दलाल की स्नेहपूर्ण स्थिर दृष्टि थी, प्रमत्त आँखें देखकर भ्रमर सोचती थी, शायद यह समुद्र में इस जीवन में तैर कर पार नहीं कर सकूँगी—जो चितवन देखकर गोविन्दलाल सोचते हुए इस संसार का सब कुछ भूल जाते थे, वह चितवन अब नहीं रही। वह प्रिय संबोधन अब नहीं रहा—वह “भ्रमर”, “भौरा”, “भँवर”, “भौ”, “भौरी”, “भन भन”—वैसे नित्य नूतन, नित्य स्नेहपूर्ण, रंगपूर्ण, संबोधन अब नहीं रहे। काली, कालिन्दी, कालीमणि आदि वे प्रिय संबोधन अब नहीं रहे। वे ओ, ए, ऐ अयि आदि प्रिय संबोधन अब नहीं रहे। वह भूठ भूठ का बुलाना अब नहीं रहा। वह भूठ भूठ की बक-भक अब नहीं रही। बात-चीत की वह प्रणाली भी अब नहीं रही। पहले बातें पूरी नहीं होती थीं, अब खोज कर लाना पड़ता है। जो बात भाषा में आधी, आँखों में आधी, अधर अधर में प्रकाशित होती थी, वह

बात अब उठ गई है। जिस बात के कहने की जरूरत नहीं, केवल जवाब में स्वर सुनने की जरूरत है, अब वह बात उठ गई है। पहले जब गोविन्दलाल और भ्रमर एक जगह रहते थे, तब गोविन्दलाल के पुकारने पर कोई सीधी तरह से नहीं पाता था—भ्रमर को पुकारने पर बिलकुल ही नहीं पाता था। अब पुकारना नहीं पड़ता—या तो “बड़ी गरमी है” या “कोई पुकार रहा है” कह कर एक आदमी उठ जाता है। उस सुन्दर पूर्णिमा के बादल ने घेर लिया है। कार्तिक की पौर्णमासी के ग्रहण लग गया है, किसी ने खालिस सोने में जस्ते की खाद मिला दी है, किसी ने बंधे स्वर के साज का तार काट दिया है।

और उस दोपहर के सूरज से खिले हुए हृदय में अंधेरा छा गया। गोविन्दलाल उस अंधेरे को उजाला करने के लिए सोचते थे रोहिणी को। भ्रमर उस घोर, महाघोर अंधकार को प्रकाशित करने के लिए सोचती थी यम को ! निराश्रय के आश्रय, अगति के गति, प्रेम-शून्य के स्थान तुम हो यम ! चित्तविनोदन, दुःखविनाशन, विपत्तिविभंजन, दीनरंजन, यम, तुम हो ! आशा-शून्य हुए की आशा, प्यार से रहित हुए का प्यार, यम, तुम हो ! हे यम, भ्रमर को ग्रहण करो !



अट्टाईसवाँ परिच्छेद

इसके बाद कृष्णकान्त का भारी श्राद्ध समाप्त हो गया। शत्रुओं ने कहा, “हाँ, समारोह किया गया, पाँच-सात हजार रुपये खर्च हुए।” मित्रों ने कहा, “एक लाख का खर्च हुआ है।” कृष्णकान्त के उत्तराधिकारियों ने मित्रों से कहा, “अंदाज़न पचास हजार रुपया

खर्च हुआ है।” हम लोगों ने खाता देखा है, कुल खर्च बत्तीस हजार तीन सौ छप्पन रुपये पाँच आने दो पैसे।

कुछ दिन तक बड़ा हंगामा रहा। श्राद्ध के अधिकारी हरलाल ने आकर श्राद्ध किया। कुछ दिन तक मक्खियों की भन-भन, बर्तनों की भन-भन, बंगलों के शोरगुल और नैयायिकों के विचार से गाँव में कानों के पर्दे पार हो गये। संदेश और मिश्रान्न की आमदनी, कंगलों की आमदनी, चाटी और रामनामियों की आमदनी, रिश्तेदार के रिश्तेदारों, उनके रिश्तेदारों की आमदनी रही। लड़के मिहीदाना, सीताभोग लेकर गेंद खेलने लगे; औरतों ने नारियल का तेल क्रीमती समझकर, निकाली पूड़ियों से बचा घी सर में लगाना शुरू किया, मदक की दूकान बन्द हो गई, सब मदक पीनेवाले फलाहार के लिए पहुँचे। शराब की दूकान बंद हो गई, कुल शराबी चाटी रख कर, रामनामी खरीद कर, चिट्ठे में शरीक होकर दक्षिणा लेने पहुँचे। चावल की दर चढ़ गई, क्योंकि सिकर अन्न का खर्च नहीं, इतने मँदे का खर्च रहा कि चावल के आटे से भी पूरा नहीं हुआ। इतने घी का खर्च रहा कि रोगियों को अंडी का तेल नहीं मिला; वालों से मट्टा खरीदने के लिए जाने पर उन्होंने कहना शुरू किया, “हमारा मट्टा भी ब्राह्मणों के आशीर्वाद से दही बन गया है।”

किसी तरह श्राद्ध का शोरगुल थमा। अंत में विल पढ़ने की मंत्रणा शुरू हुई। विल पढ़ कर हरलाल ने देखा, विल में बहुत से गवाह हैं, शोर मचाने की कोई सम्भावना नहीं। श्राद्ध समाप्त होने पर हरलाल अपनी जगह लौट गये।

विल पढ़ कर गोविन्दलाल ने अमर से आकर कहा, “तुमने विल की बात सुनी?”

अ०—न्या ?

गो०—तुम्हारा आधा हिस्सा है।

अ०—मेरा या तुम्हारा ?

गो०—अब मुझमें तुममें कुछ भेद हो गया है। मेरा नहीं,—
तुम्हारा।

अ०—तो तुम्हारा ही हुआ।

गो०—तुम्हारी जायदाद मैं नहीं लूँगा।

अमर को पहले रुलाई आई; लेकिन अहंकार के वशीभूत होकर,
रुलाई रोक कर अमर ने कहा, “तो क्या करोगे ?”

गो०—जिससे दो पैसा पैदा करके दिन पूरा कर सकूँ, वही
करूँगा।

अ०—वह क्या ?

गो०—देश देश में भ्रमण करके नौकरी की तलाश करूँगा।

अ०—जायदाद मेरे जेठ-ससुर जी की नहीं, मेरे ससुर जी की
है। तुम्हीं उनके उत्तराधिकारी हो,—मैं नहीं। जेठ-ससुर जी को
विल करने का कोई अधिकार नहीं था। विल असिद्ध है। मेरे पिता
श्राद्ध-समय नेवते में आकर यह बात समझा दे गये हैं। जायदाद
तुम्हारी है, मेरी नहीं।

गो०—मेरे ताऊ जी भूठ बोलनेवाले नहीं थे। जायदाद तुम्हारी
है, मेरी नहीं। वे जब तुम्हें लिख दे गये हैं, तब सम्पत्ति तुम्हारी
है, मेरी नहीं।

अ०—अगर ऐसा ही संदेह है, तो मैं तुम्हें लिखे देती हूँ।

गो०—क्या तुम्हारा दान लेकर मुझे जीना होगा ?

अ०—इसमें हानि क्या है ? मैं तुम्हारी दासानुदासी ही तो
हूँ ?

गो०—आज-कल यह बात फबती नहीं, अमर !

अ०—मैंने क्या किया है ? मैं तुम्हें छोड़कर इस संसार में और
कुछ भी नहीं जानती। आठ साल की उम्र में मेरी शादी हुई है—मैं
सत्तरहवें साल में पड़ी हूँ। मैं यह नौ साल और कुछ नहीं जानती,

सिर्फ तुम्हें जानती हूँ। मैं तुम्हारी पाली हुई हूँ, तुम्हारे खेलने की गुड़िया हूँ—मेरा क्या अपराध है ?

गो०—सोच कर देखो।

भ्र०—असमय में मैं नैहर चली गई थी—मुझसे घाट हुई—मुझसे सैकड़ों, हजारों अपराध हुए—तुम मेरी रक्षा करो। मैं कुछ नहीं जानती, सिर्फ तुम्हें जानती हूँ, इसी लिए नाराज हो गये थे।

गोविन्दलाल ने कोई बात नहीं कही। उसके सामने खुले बालों की, बहते आँसुओं की, विवश, कातरा, मुग्धा, पैरों पर लोटती हुई वह सत्रह साल की पत्नी ! गोविन्दलाल ने कोई बात नहीं की। गोविन्दलाल तब सोच रहे थे, “यह काली है ! रोहिणी कितनी सुन्दरी है ? इसके गुण हैं, उसके रूप है। इतने दिनों तक मैंने गुणों की सेवा की है, अब कुछ दिन रूप की सेवा करूँगा—अपने इस असार, आशारहित, प्रयोजनशून्य जीवन को अपनी इच्छा के अनुसार पार करूँगा। मिट्टी की हाँड़ी को जिस रोज़ इच्छा होगी, उसी दिन तोड़-फोड़ डालूँगा।”

भ्रमर पैरों पर पड़ी हुई रो रही है, “चमा करो ! मैं बालिका हूँ। जो अनन्त सुख और दुःख के देनेवाले, अन्तर्यामी, कातरों के बन्धु हैं, उन्होंने जरूर ये बातें सुन लीं, लेकिन गोविन्दलाल ने एक नहीं सुनी। चुपचाप खड़े रहे। गोविन्दलाल रोहिणी को सोच रहे थे। तीव्र ज्योत्स्नामयी, अनन्त-प्रभाशालिनी, प्रभात-शुक्रतारा-रूपिणी, रूपतरङ्गिणी, चंचला रोहिणी को सोच रहे थे।

जवाब न मिलते पर भ्रमर ने पूछा, “क्या कहते हो ?”

गोविन्दलाल ने कहा, “मैं तुम्हें छोड़ जाऊँगा।”

भ्रमर ने पैर छोड़ दिये, उठकर खड़ी हो गई; बाहर जा रही थी, देहरी पर ठोकर खाकर गिर पड़ी, और बेहोश हो गई।

उनतीसवाँ परिच्छेद

“मैंने क्या अपराध किया है जो मुझे छोड़ जायेंगे ?” यह बात भ्रमर खोल कर गोविन्दलाल से नहीं कह सकी—लेकिन इस घटना के बाद प्रतिपल मन में यह जिज्ञासा उठने लगी—“मेरा क्या अपराध है ?”

गोविन्दलाल भी मन में खोज करने लगे कि भ्रमर का क्या अपराध है ? भ्रमर का जो बड़ा ही कठोर अपराध हुआ है, वह गोविन्दलाल के मन में एक तरह स्थिर हो चुका है, लेकिन अपराध है कौन-सा, इस पर बहुत सोचकर उन्होंने निश्चय नहीं किया। सोच कर देखने पर, मन में आता था कि भ्रमर ने उन पर अविश्वास किया था, अविश्वास कर उन्हें इतना कठोर पत्र लिखा था—एक दफा भूठ-सच की जाँच उनके सामने उसने नहीं की, यही उसका अपराध है। जिसके लिए मैंने इतना किया, उसने इतने सीधे तौर पर मुझ पर अविश्वास किया, यह उसका अपराध है। हमने सुमति और कुमति की बात पहले कही है। गोविन्दलाल के हृदय में अगल-बगल बैठी हुई सुमति और कुमति बातचीत कर रही थीं, वह बातचीत मैं सबको सुना रहा हूँ।

कुमति ने कहा, “भ्रमर का पहला अपराध यह है कि उसने अविश्वास किया।”

सुमति ने जवाब दिया, “जो अविश्वास के योग्य है, उस पर अविश्वास क्यों न किया जाय ? तुम रोहिणी के साथ यह आनन्द कर रहे हो, इस पर भ्रमर को संदेह हुआ, क्या इसी लिए उसने इतना बड़ा अपराध कर डाला ?”

कु०—अब मैं जैसे अविश्वासी हुआ, लेकिन जब भ्रमर ने अविश्वास किया था, तब तो मैं निर्दोष था ?

सु०—दो रोज़ पहले हुआ या बाद को, बहुत कुछ नहीं आता-जाता—दोष तो किया है ? जो दोष कर सकता है, उसे दोषी सोचना क्या इतना बड़ा अपराध है ?

कु०—भ्रमर ने मुझे दोषी ठहराया है, इसी लिए मैं दोषी हुआ हूँ। साधु को चोर कहते कहते साधु चोर ही बन जाता है।

सु०—दोष उसका है जो चोर कहता है। जो चोरी करता है, उसका क्या कुछ भी नहीं ?

कु०—तेरे साथ तकरार में मैं पार नहीं पाऊँगी। देख न, भ्रमर ने मेरा कैसा अपमान किया ? मैं परदेश से आ रहा हूँ, सुनकर नैहर चली गई।

सु०—अगर उसने जो कुछ सोचा था, उस पर उसका दृढ़ विश्वास हो गया हो, तो उसने सही काम ही किया है। पति अगर दूसरी स्त्री से फँस जाय, तो नारी-शरीर रख कर कौन नाराज नहीं होती ?

कु०—वह विश्वास ही उसका भ्रम है—और दोष है क्या ?

सु०—यह बात क्या उसने एक दफा भी मुझसे पूछी ?

कु०—नहीं।

सु०—बिना पूछे हुए तुम नाराज हो रहे हो, और भ्रमर विलकुल बालिका है, बिना पूछे हुए नाराज हो गई थी, इसी लिए इतना हंगामा हुआ। यह सब काम की बातें नहीं, गुस्से का असली कारण क्या है, बतलाऊँ ?

कु०—क्या है, बतलाओ।

सु०—असली बात है रोहिणी। रोहिणी में जी लगा है—इसी लिए काली भ्रमर अब अच्छी नहीं लगती।

कु०—इतने काल तक भ्रमर किस तरह अच्छी लगी ?

सु०—इतने काल तक रोहिणी नहीं मिली थी। एक दिन में कोई बात नहीं होती। सब कुछ समय पर होता है, आज धूप

निकली है, इसलिए कल दुर्दिन क्यों नहीं हो सकता ? क्या केवल इतना ही—और भी है ।

कु०—और क्या ?

सु०—कृष्णाकान्त का विल । वृद्ध मन ही मन जानते थे कि भ्रमर को सम्पत्ति दे जाने पर सम्पत्ति तुम्हारी ही रही । यह भी जानते थे कि भ्रमर एक महीने के अन्दर वह सम्पत्ति लिख देगी । परन्तु इधर तुम्हें कुछ कुपथगामी देखकर, तुम्हारे चरित्र के सुधार के लिए, वे तुम्हें भ्रमर के आँचल में बाँध गये । तुम इतनी दूर तक न समझ कर भ्रमर से नाराज़ हो गये हो ।

कु०—यह सच है । मैं क्या स्त्री के दिये मासिक पर जीनेवाला आदमी हूँ ।

सु०—अरे बाप रे ! कितने बड़े पुरुष-सिंह हो ! तो भ्रमर से मुकदमा लड़कर डिग्री क्यों नहीं करा लेते—तुम्हारी ही तो पैत्रिक सम्पत्ति है ?

कु०—स्त्री के खिलाफ मुकदमा लड़ूँगा ?

सु०—तो फिर और क्या करोगे ? जहन्नुम में जाओ ।

कु०—उम्मी कोशिश में हूँ ।

सु०—रोहिणी क्या साथ जायगी ?

तब सुमति और कुमति में घुँसौवल और बालखिंचौवल शुरू हुई ।

तोसवाँ परिच्छेद

हमें ऐसा विश्वास है कि गोविन्दलाल की माता अगर पक्की ग्रहिणी होती, तो उनकी एक फूँक से ये काले बादल उड़ जाते । वे समझ गई थीं कि बहू के साथ उनके पुत्र का आन्तरिक विच्छेद

हो गया है। स्त्री यह सहज ही समझ सकती है। वे अगर इस समय सदुपदेश से, स्नेह-वाक्यों से, और स्त्री-बुद्धि में आनेवाले दूसरे विशद उपायों से इसके प्रतिकार की कोशिश करतीं, तो शायद अच्छा फल हो भी सकता था; परन्तु गोविन्दलाल की माता पक्की गृहिणी नहीं थीं, बल्कि बहू जायदाद की अधिकारिणी हुई है, सोचकर उस पर उनकी नाराज़गी भी हो गई थी। जिस स्नेह के बल से वे भ्रमर का भला चाहतीं, उनका वह स्नेह भ्रमर पर नहीं था। पुत्र के रहते सम्पत्ति पुत्र-वधू की हुई, यह उनके लिए असह्य हुआ। वे एक बार भी नहीं सोच सकीं कि भ्रमर और गोविन्दलाल की सम्पत्ति एक है ऐसा मान कर, गोविन्दलाल के चरित्र में दोष की सम्भावना है यह समझ कर कृष्णकान्त राय गोविन्दलाल के शासन के लिए सम्पत्ति भ्रमर को दे गये हैं। एक दफ़ा उन्होंने अपने मन में सोचा कि कृष्णकान्त मरते वक्त कुछ हद तक लुप्त-बुद्धि होकर, भ्रान्त-चित्त होकर ही यह अनुचित कार्य कर गये हैं। उन्होंने सोचा कि बहू के संसार में उन्हें केवल भोजन-वस्त्र की अधिकारिणी और घर में पड़ी पेट पालनेवालों में गिनी जाकर इस जीवन का निर्वाह करना होगा। इसलिए संसार, परिवार को छोड़ना ही अच्छा है, उन्होंने निश्चय किया। एक तो विधवा, दूसरे कुछ अपना-पराया विचार रखनेवाली, वे पति के वियोग के समय से ही काशीवास की इच्छा कर रही थीं, केवल स्त्री-स्वभाव के कारण और पुत्र के स्नेह से अब तक नहीं जा सकीं। इस समय उनकी वह कामना और प्रबल हुई। उन्होंने गोविन्दलाल से कहा, “मालिक लोग एक एक करके स्वर्ग में गये, अब मेरा समय निकट हो आया है, तुम पुत्र का काम करो, इस समय मुझे काशी भेज दो।”

गोविन्दलाल एकाएक इस प्रस्ताव से सहमत हो गये, कहाँ, “चलो, मैं तुम्हें खुद काशी छोड़ आऊँ।” दुर्भाग्य से इस समय

भ्रमर एक बार अपनी इच्छा से नैहर गई थी। किसी ने उसे मना नहीं किया। अस्तु भ्रमर के बिना जाने गोविन्दलाल काशी-यात्रा का उद्योग करने लगे। कुछ सम्पत्ति उनके नाम से थी, चुपचाप उसे बेच कर उन्होंने अर्थ-संग्रह किया। सोना, हीरा आदि कीमती धातु और पत्थर जो उनकी सम्पत्ति में थे,—वे बेच डाले। इस तरह प्रायः एक लाख रुपया इकट्ठा हुआ। गोविन्दलाल ने, इससे भविष्य में दिन पूरा करूँगा, निश्चय किया।

माता के साथ काशी चलने का दिन स्थिर कर उन्होंने भ्रमर को बुला भेजा। सास जी काशी जायँगी सुनकर, भ्रमर जादी आई। आकर सास के पैर पकड़ करके विनय की; सास के पैरों पड़कर रोने लगी, “माँ मैं बालिका हूँ—मुझे अकेली न छोड़ जाओ—मैं संसार के धर्म का क्या समझती हूँ? माँ,—संसार समुद्र है—मुझे इस समुद्र में अकेली न बहा जाओ।” सास ने कहा, “तुम्हारी बड़ी ननद रहती हैं, वे मेरी तरह तुम्हारी देख-भाल करेंगी—और तुम भी गृहिणी हुई हो।” भ्रमर कुछ भी नहीं समझी, सिर्फ रोने लगी।

भ्रमर ने देखा, सामने बड़ी विपत्ति है। सास जी छोड़ कर चलीं—और पति भी उन्हें छोड़ चले—वे भी उन्हें छोड़ने चलकर शायद फिर न लौटें। भ्रमर गोविन्दलाल के पैर पड़कर रोने लगी—बोली, “कितने दिन मैं आओगे, कहे जाओ।” गोविन्दलाल ने कहा, “कह नहीं सकता। क्योंकि बड़ी इच्छा नहीं।”

भ्रमर पैर छोड़ कर उठ कर खड़ी हो गई, सोचा, “डर क्या है? जहर खाऊँगी।”

इसके बाद निश्चय किये हुए यात्रा का दिन आ गया। हरिद्रा-ग्राम से कुछ दूर पालकी से चलकर रेल पर चढ़ना होगा। यात्रावाली शुभ लगन आ गई—सब तैयार थे। संदूक, ट्रंक, बाक्स, बैग, गठरियाँ कहाँ लोग बहँगियों में ढोने लगे। दास-दासियाँ

स्वच्छ धवल वस्त्र पहन कर, बाल सँवार कर दरवाजे के सामने खड़ी होकर पान चवाने लगीं, वे साथ जायँगी। दरवान छीट के कुर्तों के बंद कसकर, लाठी लिये कहारों से बकभक करने लगे। टोले के लड़के-लड़कियाँ देखने के लिए दूटीं। गोविन्दलाल की माता ने गृहदेव को प्रणाम किया। पुर के गुरुओं से यथायोग्य सम्भाषण कर, रोती हुई पालकी पर बैठीं। पुर के सब लोग रोने लगे; उनकी पालकी आगे बढ़ी।

इधर गोविन्दलाल पुर की दूसरी दूसरी बियों से सम्भाषण कर, शयनगृह में रोती हुई भ्रमर से बिदा होने के लिए गये। भ्रमर को रोती हुई देखकर, वे जो कुछ कहने के लिए आये थे, वह कह नहीं सके; सिर्फ कहा, “भ्रमर ! माँ को छोड़ने चला।”

भ्रमर ने आँसू पोंछ कर कहा, “माँ तो काशीवास करेंगी, तुम लौट कर नहीं आओगे ?”

यह बात जब भ्रमर ने पूछी, तब उसकी आँखों के आँसू सूख गये थे, उसके स्वर की स्थिरता, गम्भीरता, होठों की दृढ़ प्रतिज्ञा देखकर गोविन्दलाल कुछ ताज्जुब में आये। एकाएक जवाब न दे सके। भ्रमर ने पति को चुपचाप खड़ा देखकर फिर कहा, “देखो, तुमने मुझे सिखाया है, सत्य ही एकमात्र धर्म है, सत्य ही एकमात्र सुख है। आज तुम मुझसे सत्य कहना—मैं तुम्हारी आश्रिता बालिका हूँ, आज मुझसे धोखे की बात न करना—कब आओगे ?”

गोविन्दलाल ने कहा, “तो सच ही सच सुनो। लौट कर आने की इच्छा नहीं।”

भ्रमर—क्यों इच्छा नहीं, क्या यह कहते नहीं जाओगे ?

गो०—यहाँ तुम्हारा अन्नदास होकर नहीं रह सकता।

भ्र०—इसमें हानि क्या है ? मैं तो तुम्हारी दासानुदासी हूँ।

गो०—जो भ्रमर मेरी दासानुदासी है, वह प्रवास से मेरे लौटने

पर, पहुँचने की प्रतीक्षा में झरोखे में बैठी रहेगी, वैसे समय वह नैहर जाकर नहीं बैठेगी।

अ०—इसके लिए मैं कितने बार तुम्हारे पैर पकड़ चुकी हूँ, क्या एक अपराध की क्षमा नहीं होती ?

गो०—अब उस तरह के सैकड़ों अपराध होंगे। तुम अब जायदाद की मालिका हो।

अ०—ऐसा नहीं, मैंने इस दया पिता के यहाँ जाकर जो कुछ किया है वह देखो।

यह कह कर अमर ने एक काराज खोल दिया। गोविन्दलाल के हाथ में देते हुए कहा, “पढ़ो।”

गोविन्दलाल ने पढ़ कर देखा—दान-पत्र है, अमर उचित मूल्य के स्टाम्प पर अपनी कुल सम्पत्ति पति को दान कर रही है। उसकी रजिस्ट्री हो गई है। गोविन्दलाल ने पढ़ कर कहा, “तुमने अपने योग्य यह काम किया है, लेकिन तुममें मुझमें सम्बन्ध क्या है ? मैंने तुम्हें गहना दिया है, तुम पाओगी; तुम सम्पत्ति का दान करोगी और मैं लेकर सुख-भोग करूँगा—यह सम्बन्ध नहीं। यह कह कर गोविन्दलाल ने उस कीमती पान-पत्र को फाड़ कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

अमर ने कहा, “पिता ने कह दिया है, इसे फाड़ डालना व्यर्थ है। सरकार में इसकी नकल है।”

गो०—रहे, मैं चला।

अ०—कब आओगे ?

गो०—नहीं आऊँगा।

अ०—क्यों ? मैं तुम्हारी स्त्री हूँ, शिष्या हूँ, आश्रिता हूँ, पति-पालिता हूँ, दासानुदासी हूँ, तुम्हारी बात सुनने की भिखारिन हूँ—आओगे क्यों नहीं।

गो०—इच्छा नहीं।

भ्र०—क्या धर्म नहीं है ?

गो०—मेरा शायद वह भी नहीं ।

भ्र०—बड़े कष्ट से भ्रमर ने आँसू रोके । आज्ञामात्र से आँसू रुक गये—भ्रमर हाथ जोड़ कर अकंपित कंठ से कहने लगी, “तो जाओ—तुमसे हो सके तो न आना । बिना अपराध के मुझे छोड़ना चाहते हो तो छोड़ दो,—लेकिन याद रखो, ऊपर देवता हैं । याद रखो, एक रोज़ मेरे लिए तुम्हें रोना होगा । याद रखो—एक दिन तुम खोजोगे, इस पृथिवी में अकृत्रिम आन्तरिक स्नेह कहाँ है ? देवता साक्षी हैं । अगर मैं सती हूँ, काया, मन और वाक्य से तुम्हारे चरणों में मेरी भक्ति है, तो मेरी तुमसे फिर मुलाकात होगी । मैं उसी आशा से प्राण रखूँगी । अब जाओ, कहने की इच्छा कहाँ कि अब नहीं आऊँगा । लेकिन मैं कहती हूँ—फिर आओगे—फिर भ्रमर कह कर पुकारोगे—मेरे लिए रोओगे । अगर यह बात निष्फल होगी, तो समझना—देवता मिथ्या हैं, धर्म मिथ्या है, भ्रमर असती है । तुम जाओ, मुझे दुःख नहीं । तुम मेरे ही हो—रोहिणी के नहीं ।”

यह कह कर भ्रमर ने भक्तिपूर्वक पति के चरणों में प्रणाम कर, मन्द गति से दूसरे कमरे में जाकर दरवाजा बन्द कर लिया ।

इकतीसवाँ परिच्छेद

यह आख्यायिका शुरू करने के कुछ पहले भ्रमर के एक पुत्र हुआ था और सूतिकागृह में ही मर गया था । भ्रमर आज दूसरे कमरे में जाकर उस सात रोज़ के लड़के के लिए रोने बैठी । कर्श पर धूल में लोटती हुई लम्बी लम्बी साँस लेती छोड़ती हुई पुत्र के लिए रोने लगी—“अरे मेरे बच्चे, मक्खन के पुतले, मुझ कंगालिन के

जिगर के टुकड़े, आज तू कहाँ है ? आज तू रहता तो किसकी मजाल थी, जो मुझे छोड़ जाता ? मेरी माया की डोर काटता, तेरी माया की कौन काटता ? मैं कुरूप हूँ, बुरी हूँ, तुझे कौन कुरूप कहता ? तुझसे कौन सुन्दर था ? एक दफ़ा आज मेरे लाल—इस विपत्ति के वक्त एक दफ़ा दिखाई नहीं दे सकते ? गुजर जाने पर क्या फिर मुलाकात नहीं होती ?” भ्रमर तब हाथ जोड़ कर, आँखें उठाकर, अधखिली बातों से मन ही मन देवताओं से पूछने लगी—“कोई मुझे बता दे, मेरे किस क्रसूर से इस १७ साल की उम्र में ऐसी बुरी हालत हुई । मेरा बच्चा गुजर गया—मेरे पति ने मुझे छोड़ दिया । मेरी सिर्फ १७ साल की उम्र—इस उम्र में पति को प्यार करना छोड़ और कुछ भी मैंने नहीं चाहा—और किसी को मैंने प्यार नहीं किया—इस लोक में मेरी दूसरी कामना नहीं—और कोई कामना करना मैंने सीखा भी नहीं—फिर आज इस सत्रह साल की उम्र में निराश क्यों हुई ?”

रोती-धाती भ्रमर ने यह सिद्धान्त किया—देवता बड़े निठुर हैं । जब देवता निठुर हैं, मनुष्य और क्या करेगा, सिर्फ आँसू बहायेगा । भ्रमर सिर्फ रोने लगी । इधर गोविन्दलाल भ्रमर से बिदा होकर धीरे-धीरे बाहरवाले कमरे में आये । हम सच कहेंगे, गोविन्दलाल आँसू पोंछते पोंछते आये । बालिका की बड़ी ही सरल अकृत्रिम जो प्रीति है, उद्वेलित होती हुई, बात-बात में खेलती हुई, जिसकी धारा दिन-रात बह रही है, भ्रमर से वह अनमोल प्रीति पाकर गोविन्दलाल सुखी हुए थे । अब गोविन्दलाल को वह याद आई । याद आया कि वे जो कुछ छोड़ आये, वह और पृथ्वी में नहीं पायेंगे । सोचा, मैंने जो कुछ किया है, वह अब लौट नहीं सकता—तो चलता हूँ, यात्रा कर चुका हूँ, शायद अब लौटा नहीं जायगा । कुछ हो, चल चुका हूँ, अब चले ।

इस समय अगर गोविन्दलाल दो कदम लौट कर भ्रमर के भेड़े

हुए दरवाजे ढकेल कर एक दफा कहते—“भ्रमर, मैं फिर आया हूँ”, तो कुल उलभन सुलभ जाती। बहुत दफे गोविन्दलाल की वह इच्छा हुई थी। इच्छा होने पर भी उन्होंने वैसा नहीं किया। इच्छा होने पर भी कुछ लज्जा लगी। उन्होंने सोचा, इतनी जल्दी क्या है? जब मैं लाऊँगा, तभी लौट आऊँगा। भ्रमर के पास गोविन्दलाल अपराधी हो गये। भ्रमर से फिर मुलाकात करने की हिम्मत नहीं हुई। कुछ हो, एक निश्चय करने की अवसर नहीं हुई। जिस रास्ते से जा रहे थे, उसी रास्ते चले, विचार का पत्ता छोड़ कर उन्होंने चौपाल में आकर सजे हुए घोड़े पर चढ़ कर उसे चाबुक लगाया। उनके रास्ता चलते समय रोहिणी की रूप-राशि हृदय में खिल उठी।



दूसरा खण्ड

पहला परिच्छेद

(पहला साल)

हरिद्राग्राम के मकान में खबर आई—गोविन्दलाल माता आदि के साथ स्वस्थ शरीर से निर्विघ्न काशी पहुँच गये। भ्रमर के पास कोई पत्र नहीं आया। पत्र मुलाजिमों के पास आने लगा ! मान से भ्रमर ने भी पत्र नहीं लिखा।

एक महीना बीता, दो महीने बीते, पत्र आते रहे। अंत में एक दिन संवाद आया कि गोविन्दलाल काशी से घर के लिए रवाना हो चुके हैं। भ्रमर सुनकर समझी कि गोविन्दलाल माँ को भुलावा देकर दूसरी जगह गये हैं। घर आवेंगे, ऐसा भरोसा नहीं हुआ।

इस समय भ्रमर छिपाकर सदा रोहिणी की खबर लेने लगी। रोहिणी भोजन पकाती है, परोसती है, खाती है, नहाती है, पानी भरती है और कोई खबर नहीं है। क्रमशः एक दिन यह संवाद आया कि रोहिणी बीमार है। घर के भीतर चादर ओढ़ कर पड़ी रहती है, बाहर नहीं निकलती। ब्रह्मानन्द आप पकाते-खाते हैं।

इसके बाद एक रोज़ खबर आई कि रोहिणी कुछ अच्छी हो गई है, लेकिन रोग की जड़ नहीं गई। शूल रोग है—कोई दवा नहीं—अच्छी होने के लिए रोहिणी ताड़केश्वर धरना देने जायगी। बाद को खबर आई—रोहिणी धरना देने के लिए ताड़केश्वर गई है, अकेली गई है—साथ कौन जायगा ?

इधर तीन-चार महीने बीत गये, गोविन्दलाल लौटकर नहीं आये। पाँच-छः महीने बीते, गोविन्दलाल नहीं लौटे। भ्रमर के रोने

की समाप्ति नहीं हुई। सिर्फ सोचती थी, अब कहाँ हैं? कैसे हैं? खबर मिले तो आराम की साँस लूँ। खबर भी क्यों नहीं मिलती?

अंत में ननद से कहकर सास को पत्र लिखाया—“आप माता हैं, अवश्य अपने पुत्र का संवाद पाती हैं।” सास ने लिखा, वे गोविन्दलाल का संवाद पाया करती हैं। गोविन्दलाल प्रयाग, मथुरा, जयपुर आदि जगहों में घूम कर इस समय दिल्ली में रह रहा है। वहाँ से जल्द दूसरी जगह जायगा। कहीं स्थायी रूप से नहीं रह रहा। इधर रोहिणी भी फिर नहीं लौटी, भ्रमर सोचने लगी, भगवान् जाने, रोहिणी कहाँ गई! मैं अपने मन का संदेह पाप-मुँह से व्यक्त नहीं करूँगी। भ्रमर और सह नहीं सकी। रोती हुई ननद से कह कर पालकी में बैठ कर नैहर चली गई। वहाँ से गोविन्दलाल का संवाद मिलना दुरूह हुआ देखकर फिर लौट आई, आकर हरिद्राग्राम में भी पति का कोई संवाद न पाकर फिर सास को खत लिखाया। इस दफा सास ने लिखा, “गोविन्दलाल अब कोई संवाद नहीं देता; इस समय वह कहाँ है हमें नहीं मालूम। कोई संवाद नहीं मिला।” इस तरह पहला साल कट गया। पहले साल के समाप्त होने पर भ्रमर रुग्ण होकर पलंग पर पड़ी। अपराजिता फूल कुम्हलाने लगा।



दूसरा परिच्छेद

भ्रमर रुग्ण होकर शय्या पर पड़ी है, सुन कर भ्रमर के पिता देखने आये। भ्रमर के पिता का परिचय हमने विशेष नहीं दिया—अब देंगे। उनके पिता माधवीनाथ सरकार की उम्र ४१ साल की है, देखने में खासे अच्छे जवान; उनके चरित्र के सम्बन्ध में लोगों

में बड़े मतभेद हैं। बहुतेरे उनकी बड़ी तारीफ़ करते हैं, बहुतेरे कहते हैं, उनकी तरह का बुरा आदमी दूसरा नहीं। वे चतुर हैं, यह सभी मानते हैं—और जो उनकी तारीफ़ करते हैं, वे भी उनसे डरते हैं।

लड़की की दशा देखकर माधवीनाथ बहुत रोये। देखा—वह श्यामा सुन्दरी, जिसके कुल अंग सुललित गठनवाले थे, अब सूख गये हैं, शरीर काँटा हो गया है, गले का घेघ दिखने लगा है, आँखें जैसे गढ़े में समा गई हों। भ्रमर भी बहुत रोई। अंत में दोनों का रोना रुकने पर भ्रमर ने कहा, “पिता जी, मुझे जान पड़ता है अब अधिक दिन नहीं हूँ। मुझसे कुछ धर्म-कर्म कराओ। मैं अभी लड़की हूँ तो क्या हुआ, मेरे दिन पूरे हो आये हैं। दिन पूरे हों तो अब देर क्यों करूँ? मेरे बहुत धन है, मैं व्रत-नियम करूँगी। कौन यह सब करायेगा? पिता जी, तुम्हीं इसकी व्यवस्था करो।”

माधवीनाथ ने कोई जवाब नहीं दिया—जब और न सहा गया तब बाहरवाले कमरे में आये। वहाँ बड़ी देर तक बैठे रोते रहे, सिर्फ़ रोना ही नहीं—वह मर्मभेदी दुःख माधवीनाथ के हृदय में घोरतर क्रोध में बदल गया। मन ही मन सोचने लगे, “जिसने मेरी लड़की पर यह अत्याचार किया है—उस पर ऐसा ही अत्याचार करे, इस संसार में क्या ऐसा कोई नहीं?” सोचते सोचते माधवीनाथ का हृदय कातरता के बदले क्रोध से भर गया। माधवीनाथ ने तब बड़ी बड़ी लाल आँखें निकाल कर प्रतिज्ञा की, “जिसने मेरी भ्रमर की ज़िन्दगी बिगाड़ दी, मैं भी उसी तरह उसकी ज़िन्दगी बरबाद कर दूँगा।”

तब माधवीनाथ बहुत कुछ स्थिर होकर अंतःपुर में फिर गये। कन्या से जाकर कहा, “बेटी, तुम व्रतनियम करने की बात कह रही थीं, मैं वही बात सोच रहा था। अभी तुम्हारा शरीर बहुत

रुग्ण है, व्रत-नियम करने पर बहुत उपवास करना पड़ता है, अभी तुम उपवास सहने लायक नहीं हो। तुम्हारा शरीर कुछ स्वस्थ हो जाय।”

भ्र०—यह शरीर अब स्वस्थ क्या होगा ?

माध०—स्वस्थ नहीं होगा—क्या हुआ है ? यहाँ तुम्हारी कुछ भी दवा-दारू नहीं होती—होगी भी कैसे ? ससुर नहीं—सास नहीं, कोई पास नहीं—वैद्य को कौन दिखायेगा ? तुम इस वक्त हमारे साथ चलो। हम तुम्हें घर ले जाकर चिकित्सा करावेंगे। हम अभी दो रोज यहीं रहेंगे, इसके बाद हम तुम्हें अपने साथ राजग्राम ले जायेंगे।

राजग्राम में भ्रमर का नैहर है।

लड़की से बिदा होकर माधवीनाथ लड़की के मुलाजिमों के पास गये। दीवान जी से पूछा ? क्यों, बाबू का कोई खत भी आता है ? दीवान जी ने जवाब दिया, “जी नहीं।”

माध०—वे इस वक्त कहाँ हैं ?

दीवान जी—उनकी कोई खबर हममें कोई नहीं बता सकता। वे कोई खबर नहीं भेजते।

माध०—यह खबर किससे मालूम हो सकती है ?

दी०—यह मालूम होता तो हमी लोग खबर मालूम करते रहते। माता जी के पास संवाद जानने के लिए काशी आदमी भेजा था—लेकिन वहाँ से भी कोई संवाद नहीं आया। बाबू का इस वक्त अज्ञातवास है।

तीसरा परिच्छेद

लड़की की दुर्दशा देखकर माधवीनाथ ने दृढ़ प्रतिज्ञा की थी कि इसका प्रतीकार करूँगा। गोविन्दलाल और रोहिणी इस अनिष्ट के मूल हैं। अस्तु, पहले पता लगाना जरूरी है कि ये दोनों नीच कहाँ हैं ? नहीं तो दुष्टों का दंड न होगा—भ्रमर भी मरती है।

वे बिलकुल छिप गये हैं। जिन सूत्रों से पकड़ में आने की संभावना थी, वे सब काट दिये हैं, पैर के निशान तक पोंछ डाले हैं। परन्तु, माधवीनाथ ने कहा, “अगर मैं उनका पता न लगा सका तो पौरुष की बड़ाई व्यर्थ करता हूँ।”

इस तरह का दृढ़ संकल्प कर माधवीनाथ अकेले-अकेले रायों के मकान से निकले। हरिद्राग्राम में एक डाकखाना था; हाथ में बैत लिये, झूमते हुए पान चबाते चबाते धीरे धीरे निरीह भले आदमी जैसे माधवीनाथ वहाँ गये।

डाकखाने में एक छप्पर के नीचे अँधेरे में पन्द्रह रुपया महीना पानेवाले एक डिंटी पोस्टमास्टर विराजमान हैं। आम की लकड़ी की एक टूटी मेज पर कुछ चिट्ठियाँ, चिट्ठी की फाइल, लिफाफे, एक कुल्हड़ में थोड़ा-सा गोंद, एक तराजू, डाकखाने की मुहर आदि लेकर पोस्टमास्टर उर्फ पोस्ट बाबू गम्भीर भाव से जनाब डाकिया साहब पर अपना रोब गाँठ रहे हैं। डिंटी पोस्टमास्टर साहब माहवारी तनख्वाह १५ रुपया पाते थे। जनाब डाकिया साहब ७ रुपये। जनाब डाकिया साहब सोचते थे, सात आने और पन्द्रह आने में जो फर्क है पोस्टमास्टर से मेरा उससे ज्यादा फर्क नहीं। लेकिन पोस्टमास्टर मन ही मन सोचते थे, मैं एक डिंटी हूँ, और यह एक प्यादा है—मैं इसका हर्ता, कर्ता, विधाता हूँ—इसमें मुझमें जमीन आसमान का फर्क है। इस बात को साबित करने के लिए पोस्टमास्टर साहब हमेशा उस गरीब पर

पेंठा करते हैं—वह सात आने के वज्रन का जवाब दिया करता है । बाबू इस वज्रत चिट्ठी तोल रहे थे और साथ साथ प्यादे पर अस्सी आने वज्रन की हेठी रख रहे थे, ऐसे समय प्रशान्त-मूर्ति, हास्य-वदन माधवीनाथ वहाँ उपस्थित हुए । भद्रजन देखकर उस समय पोस्टमास्टर बाबू प्यादे से बक-भक बंद करके, मुँह फैलाकर, उनकी तरफ ताकने लगे । भद्रजन का समादर किया जाता है, ऐसी एक बात उनके मन में आई तो, लेकिन समादर किस प्रकार किया जाता है, यह उनकी शिक्षा के भीतर नहीं था, इसलिए वैसा नहीं हो सका ।

माधवीनाथ ने देखा, एक बन्दर है, हँस कर पूछा, “ब्राह्मण हैं ?”

पोस्टमास्टर ने कहा, “हाँ—तु—आप ?”

माधवीनाथ ने हँसी कुछ रोककर सर झुकाये हुए हाथ जोड़कर मत्था छूते हुए कहा, “प्रातः प्रणाम !”

माधवीनाथ कुछ विपत्ति में पड़े, पोस्ट बाबू ने कहा तो, “बैठिए” लेकिन बैठे कहाँ—बाबू खुद एक तीन पाये की कुर्सी पर बैठे हैं, इसके अलावा और बैठने का आसन कहीं नहीं । तब पोस्ट-मास्टर बाबू के हरिदास नाम के सात आनेवाले प्यादे ने एक टूटे स्टूल पर से फटी बहियों की राशि उतार कर माधवीनाथ को बैठने के लिए दिया ।

माधवीनाथ ने बैठकर उस पर निगाह डालते हुए कहा, “कहिए, आप कैसे हैं, आपको जैसे कहीं देखा है—क्यों ?”

प्यादा—जी, मैं चिट्ठियाँ बाँटा करता हूँ ।

माधवी०—इसी लिए पहचानता हूँ । जरा चिलम तो भर लो ।

माधवीनाथ दूसरे गाँव के आदमी हैं; उन्होंने कभी चिट्ठीरसा हरिदास बैरागी को नहीं देखा और बैरागी बाबा जी ने भी उन्हें कभी नहीं देखा । बाबा जी ने सोचा, बाबू मजे के आदमी हैं, कभी

माँगने पर चार आने पैसे क्यों बख्शिशा नहीं देंगे ? यह सोचकर हरिदास हुक्के की तलाश में दौड़े ।

माधवीनाथ तम्बाकू बिलकुल नहीं पीते । सिर्फ हरिदास बाबा जी को बिदा करने के लिए तम्बाकू की फरमाइश की थी ।

जनाब चिट्ठीरसा जब दूसरी जगह गये, माधवीनाथ ने पोस्ट बाबू से कहा, “आपसे एक बात पूछने के लिए आया हूँ ।”

पोस्टमास्टर बाबू मन-ही-मन हँसे, वे पूर्ववङ्ग के रहनेवाले थे, विक्रमपुर के । दूसरी ओर कैसे भी बेवकूफ क्यों न हों अपना काम समझने में सुई की नोक-सी उनकी पैनी बुद्धि थी । वे समझ गये कि बाबू किसी विषय की खोज में आये हैं, पूछा, “कौन-सी बात, जनाब ?”

माधवी०—आप ब्रह्मानन्द को पहचानते हैं ?

पोस्ट०—नहीं पहचानता—पहचानता हूँ—अच्छी तरह नहीं पहचानता ।

माधवीनाथ समझ गये, अवतार अपना रूप धारण करने का उपक्रम कर रहा है । पूछा, “आपके डाकखाने में ब्रह्मानन्द घोष के नाम का कोई पत्र आता है ।”

पोस्ट०—आपसे ब्रह्मानन्द घोष की जान-पहचान नहीं ?

माधवी०—हो या न हो, यह बात आपसे मालूम करने आया हूँ ।

पोस्टमास्टर बाबू तब अपना ऊँचा पद और डिप्टीगरी का अभिमान याद करके डट कर बैठे, और कुछ रुष्ट होकर कहा, “डाकखाने की खबर कहने की हमें मनाही है ।” यह कह कर पोस्ट-मास्टर चुपचाप डाक वज्रन करने लगे ।

माधवीनाथ मन-ही-मन हँसने लगे, खुलकर कहा, “अजी जनाब, आप सीधे बात नहीं बतलायेंगे, यह हमें मालूम है । इसके लिए कुछ साथ भी ले आये हैं—कुछ दे जायेंगे, इस समय जो जो कुछ पूछते हैं, सही सही बतला तो जाइए ।”

तब पोस्ट बाबू ने हर्षोत्फुल्ल मुख से पूछा, “क्या पूछते हैं ?”

माधवी०—यही पूछते हैं कि ब्रह्मानन्द के नाम की कोई चिट्ठी-पत्री डाकखाने में आती है ?

पो०—आती है ।

मा०—कितने कितने दिन बाद ?

पो०—जो बात कह दी, उसके लिए अभी रुपया नहीं मिला । पहले उसका रुपया निकालिए, तब दूसरी बात पूछिएगा ।

माधवीनाथ की इच्छा थी कि पोस्टमास्टर को कुछ दे जायँ । परन्तु उसके चरित्र से बहुत परेशान हो उठे । कहा, “सुनो, तुम्हें विदेशी आदमी देख रहा हूँ, मुझे पहचानते हो ?”

पोस्टमास्टर ने सर हिला कर कहा, “नहीं । आप कोई भी हों, हम लोग डाकखाने की जिस-तिस से थोड़े ही कहते हैं ? तुम कौन हो ?

माध०—मेरा नाम माधवीनाथ सरकार है—राजग्राम में रहता हूँ । मेरे साथ कितने लठैत रहते हैं, कुछ खबर रखते हो ?

पोस्टमास्टर डरे—माधवी बाबू का नाम और प्रबल प्रताप सुना था । पोस्ट बाबू कुछ देर चुप रहे ।

माधवीनाथ कहने लगे, “मैं जो कुछ तुमसे पूछूँ, सही सही जवाब दो । ज़रा भी इधर-उधर न करना । करोगे तो तुम्हें कुछ दूँगा नहीं—एक पैसा भी नहीं । परन्तु अगर नहीं बतलाओगे या बहकाओगे, तो तुम्हारे घर में आग लगवा दूँगा, तुम्हारा डाकखाना लुटवा लूँगा, अदालत में साबित कराऊँगा कि तुमने अपने आदमी लगाकर सरकारी रुपया चुराया है—क्यों, अब बतलाओगे ?

पोस्ट बाबू थरथर काँपने लगे, कहा, “आप नाराज़ क्यों होते हैं ? मैं तो आपको पहचानता था नहीं । मामूली आदमी सोच कर ही वैसा कहा था—आप जब आये हैं, तब जो कुछ पूछेंगे, वह कहूँगा ।”

माधवी०—कितने कितने दिन बाद ब्रह्मानन्द की चिट्ठी आती है ?

पोस्ट०—प्रायः महीने महीने, कुछ निश्चय नहीं ।

माध०—तो रजिस्ट्री की हुई चिट्ठी ही आती है ?

पोस्ट०—हाँ, प्रायः बहुत-सी चिट्ठियाँ रजिस्ट्री की हुई ।

माध०—किस डाकखाने से रजिस्ट्री आती है ?

पोस्ट०—याद नहीं ।

माध०—तुम्हारे डाकखाने में एक रसीद रहती है न ?

पोस्टमास्टर ने रसीद खोज कर निकाली । एक पढ़ कर कहा,
“प्रसादपुर ।”

“प्रसादपुर किस जिले में है ? अपनी किताब देखो ।”

पोस्टमास्टर ने काँपते हुए किताब उठाई, कहा, “जशोर ।”

माध०—देखो फिर, और कहाँ कहाँ से रजिस्ट्री उसके नाम आई है । कुल रसीदें देखो ।

पोस्टमास्टर ने देखा, इधर जितने पत्र आये हैं, सब प्रसादपुर से आये हैं । माधवीनाथ पोस्ट बाबू के काँपते हाथ में दस रुपये का एक नोट रख कर बिदा हुए । तब तक हरिदास बाबा जी को हुक्का नहीं मिला । माधवीनाथ हरिदास बाबा जी के लिए एक हुक्का रख गये । कहना नहीं होगा कि पोस्ट बाबू ने उसे आत्मसात् किया ।

—

चौथा परिच्छेद

माधवीनाथ हँसते हुए लौट आये । गोविन्दलाल और रोहिणी के अधःपतन की बातें माधवीनाथ लोगों से सुन चुके थे । उन्होंने मन-ही-मन निश्चय कर लिया था कि रोहिणी और गोविन्दलाल एक जगह छिपकर रह रहे हैं । ब्रह्मानन्द की हालत भी वे अच्छी

तरह जानते थे। जानते थे कि रोहिणी के सिवा उनके और कोई नहीं। अस्तु जब डाकखाने में मालूम किया कि ब्रह्मानन्द के नाम महीने महीने रजिस्ट्री आती है, तब समझे कि या तो गोविन्दलाल महीने महीने उन्हें खर्च भेजते हैं या रोहिणी भेजती है। प्रसादपुर से चिट्ठी आती है, तो दोनों प्रसादपुर या उसके पास के किसी स्थान पर अवश्य रहते हैं, परन्तु निश्चय को दृढ़तर करने के लिए लड़की के घर जाते ही उन्होंने एक आदमी थाने भेजा। दारोगा को लिख भेजा, “एक सिपाही भेजिएगा। मुमकिन, कुछ चोरी का माल पकड़ा दूँ।”

दारोगा माधवीनाथ को बहुत अच्छी तरह जानते थे—डरते भी थे, पत्र पाते ही निद्रासिंह सिपाही को उन्होंने भेज दिया। माधवीनाथ ने निद्रासिंह के हाथ में दो रुपये देकर कहा, “सुनते हो, हिन्दी-फिन्दी न कहना—जैसा हम कहते हैं, वैसा करो। उस पेड़ के नीचे जाकर छिपे रहो, ताकि यहाँ से देख पड़े। और कुछ नहीं करना होगा।” निद्रासिंह स्वीकृत होकर बिदा हुआ। माधवीनाथ ने तब ब्रह्मानन्द को बुला भेजा। ब्रह्मानन्द आकर पास बैठे। तब वहाँ और कोई नहीं था।

एक ने दूसरे से खैरियत पूछी, बाद को माधवीनाथ ने कहा महाशय, आपसे हमारे स्वर्गीय सम्बन्धी जी की बड़ी आत्मीयता थी। अब उनके तो कोई है नहीं—मेरे जामाता भी विदेश में रहते हैं। आप पर कोई विपत्ति-आपत्ति पड़ने पर हमी लोगों को देखना पड़ता है—इसी लिए आपको बुलाया है।”

ब्रह्मानन्द का मुँह सूख गया। पूछा, “विपत्ति कैसी महाशय?”

माधवीनाथ ने गम्भीरतापूर्वक कहा, “आप कुछ विपत्ति में ज़रूर हैं।”

ब्र०—कौनसी विपत्ति, महाशय?

मा०—विपत्ति-समूह । पुलिस को किसी तरह सही सही पता लगा है कि आपके यहाँ एक चुराई नोट है ।

ब्रह्मानन्द आसमान से गिरे । “वह क्या ? मेरे पास चुराई नोट ?”

मा०—मुमकिन, तुम खुद चोर को न जानते होओ, बिना जाने हुए नोट रख दी हो ।

ब्र०—वह कैसे, महाशय, मुझे नोट कौन देगा ?

माधवीनाथ ने तब आवाज़ धीमी करके कहा, “मुझे कुल बात मालूम हो चुकी हैं, पुलिस को भी मालूम हैं । वास्तव में पुलिस के पास ही ये बातें सुनी हैं । चुराई नोट प्रसादपुर से आई है, वह देखो, एक पुलिस का सिपाही तुम्हारे लिए आकर खड़ा है । मैंने उसे कुछ देकर अभी रोक रक्खा है ।”

माधवीनाथ ने तब पेड़ के नीचे विचरण करनेवाले, डण्डा लिये हुए, दाढ़ी मूछों से शोभित सिपाही की जलधर-जैसी कमनीय मूर्ति दिखलाई ।

ब्रह्मानन्द थरथर काँपने लगे । माधवीनाथ के पैर पकड़कर रोते हुए कहा, “आप मेरी रक्षा कीजिए ।”

मा०—डरो नहीं, अबके प्रसादपुर से किस किस नम्बर की नोटें मिली हैं, बतलाओ । पुलिस का आदमी हमारे पास नोट का नम्बर दे गया है । अगर उस नम्बर की नोट न होगी, तो डर क्या है ? नम्बर बदलते कितनी देर लगेगी ? एक बार प्रसादपुर का पत्र ले तो आओ—नोट का नम्बर देखें ।

ब्रह्मानन्द जायँ किस तरह ? डरते थे—पेड़ के नीचे सिपाही खड़ा था ।

माधवीनाथ ने कहा, “कोई डर नहीं, मैं साथ आदमी देता हूँ ।” माधवीनाथ की आज्ञा के अनुसार एक दरबान ब्रह्मानन्द

के साथ गया। ब्रह्मानन्द रोहिणी का पत्र ले आये। उस पत्र में माधवीनाथ जो जो कुछ खोज रहे थे, सब उन्हें मिला।

पत्र पढ़कर ब्रह्मानन्द को वापस करते हुए बोले, “इस नम्बर की नोट नहीं। कोई भय नहीं, तुम घर जाओ। हम सिपाही को बिदा किये दे रहे हैं।”

ब्रह्मानन्द के जैसे मृत शरीर में प्राण आये, वह लम्बी साँस खींच कर वहाँ से भगा।

माधवीनाथ इलाज के लिए लड़की को अपने घर ले गये। उसकी चिकित्सा के लिए योग्य चिकित्सक लगाकर स्वयं कलकत्ता चले। अमर ने बहुत रास्ता रोका—माधवीनाथ ने उधर कान नहीं दिया। “जल्द आ रहे हैं” कहकर लड़की को सान्त्वना दे गये।

कलकत्ते में निशाकरदास नाम के माधवीनाथ के एक बड़े आत्मीय थे। निशाकर माधवीनाथ से आठ-दस साल के छोटे थे। निशाकर कुछ करते नहीं—पैत्रिक सम्पत्ति है—सिर्फ कुछ कुछ गाने-बजाने की चर्चा करते हैं; कोई काम नहीं, इसलिए अक्सर पयटन किया करते हैं। माधवीनाथ ने आकर उनसे मुलाकात की। दूसरी दूसरी बातों के बाद निशाकर से पूछा, “क्यों जी, धूमने चलोगे?”

निशा०—कहाँ?

माध०—जशोर।

निशा०—वहाँ क्यों?

माध०—नील की कोठी खरीदेंगे।

निशा०—चलो।

फिर आवश्यक तैयारियाँ करके दोनों मित्र दिन भर के अन्दर अन्दर जशोर के लिए रवाने हो गये। वहाँ से प्रसादपुर जायेंगे।

पाँचवाँ परिच्छेद

देखो, धीरे धीरे शीर्णकाया चित्रा नदी बह रही है—किनारे पीपल, कदम, आम, खजूर आदि असंख्य वृक्ष शोभित हैं, उपवन में कोयल, पपीहा, दोयल आदि बोल रहे हैं। पास गाँव नहीं। प्रसादपुर नाम का एक छोटा बाज़ार प्रायः कोस भर दूर है। यहाँ मनुष्यों का समागम नहीं, देखकर निःशङ्क चित्त से, पापाचरण का स्थान है, समझ कर, पहले एक नीलकर साहब ने यहाँ नील की एक कोठी बनाई थी। इस समय नीलकर और उसका पेश्वर्य ध्वंसपुर को प्रयाण कर गया है—उसके अमीन, तगादेदार, नायब, गुमाश्ते यथायोग्य स्थानों में अपने उपाजित कर्मों का फल भोग रहे हैं। एक बङ्गाली ने वह जन-शून्य प्रान्तर-स्थित रम्य अट्टालिका खरीदकर उसे सजाया था। फूलों से, पत्थर की मूर्तियों से, आसनों से, दर्पणों से, चित्रों से गृह विचित्र हो गया था। उसके भीतर के दोमञ्जिले के बड़े कमरे में हम लोग चले। कमरे में बियों के कुछ चित्र हैं—परन्तु कुछ सुरुचिविगर्हित हैं—अवर्णनीय। निर्मल सुकोमल आसन पर बैठा हुआ एक दाढ़ीवाला मुसलमान एक तम्बूरे के कान ऐंठ रहा है—पास बैठी हुई एक युवती ठन् ठन् करके दायें (तबले) में उँगली मार रही है—साथ साथ हाथ के सोने के गहनों की झनकार हो रही है—पास की दीवार से लगे दो बड़े आईनों में दोनों के बिम्ब भी वैसा ही कर रहे थे। पास के कमरे में बैठे एक युवा पुरुष उपन्यास पढ़ रहे हैं और बीच के खुले दरवाजे से युवती का काम देख रहे हैं।

तम्बूरे के कान ऐंठते ऐंठते दाढ़ीधर तार में उँगली मार रहा था। जब तार की मेंव-मेंव और तबले की ठन्-ठन् उस्ताद जी की विवेचना में मिल गई, तब वे उस मूछ और दाढ़ी के आँधरे के भीतर से कुछ तुषारधवल-दन्त निर्गत करके वृषभदुर्लभ कण्ठस्वर निकालने लगे।

स्वर निकालते निकालते वे तुषारधवल-दन्त तरह तरह की खींचतान में बदलने लगे और भौरे-सी काली दाढ़ी की राशि उसका अनुवर्तन करती हुई तरह तरह का तमाशा करने लगी। उस खींचतान से ताड़ित उस युवती ने भी वृषभ-दुर्लभ कण्ठ से अपना कोमल गला मिलाया और गाने लगी—मोटी और बारीक आवाज़ से एक प्रकार सुनहले-रूपहले तौर का गाना होने लगा।

यहीं आखिरी पर्दा गिराने की इच्छा होती है। जो अपवित्र है, अदर्शनीय है, वह हम नहीं दिखायेंगे। जिसके कहे बिना काम नहीं चलता, वही कहेंगे। लेकिन फिर भी उस अशोक-बकुल-कुरवक-कुटज्-कुञ्ज में भ्रमर-गुञ्जन, कोकिल-कूजन, उस छोटी नदी की तरङ्ग पर तैरते-चलते राजहंसों का कलनाद, जुही, चमेली, बेला, मधु-मालती आदि फूलों का सौरभ, उस कमरे में नीले शीशे के भीतर से आती धूप की अपूर्व माधुरी, स्फटिक आदि से निर्मित उस चाँदी के पुष्पाधार पर अच्छी तरह रखे गुलदस्ते की शोभा, कमरे को भड़कीला बनानेवाली उन वस्तुओं की तड़क-भड़क, और गवैये की विशुद्ध स्वर-सप्तक की बहुविध सृष्टि, इन सबका क्षणिक उल्लेख हमने किया। क्योंकि जो युवक निविष्ट मन से युवती के चपल कटाक्ष देख रहा है उसके हृदय में उन कटाक्षों की मधुरता ही बाकी और और चीजों को स्फूर्ति दे रही है।

यह युवा गोविन्दलाल है—वह युवती रोहिणी है, यह घर गोविन्दलाल ने खरीदा है। यहीं वे लोग स्थायी हैं।

अकस्मात् रोहिणी का तबला वेसुरा बोला। उस्ताद जी के तानपूरे का तार कट गया, उनके गले में लहरा लगा, गाना रुक गया, गोविन्दलाल के हाथ का उपन्यास गिर गया। उसी समय उस प्रमोद-गृह के द्वार से एक अपरिचित युवा भीतर पैठा। हम उसे पहचानते हैं—वह निशाकरदास है।

छठा परिच्छेद

अट्टालिका की दूसरी मञ्जिल पर रोहिणी रहती है—आधी पर्दानशीन। नीचे की मञ्जिल में नौकर रहते हैं। उस एकान्त में प्रायः कभी कोई गोविन्दलाल से मिलने नहीं जाता, इसलिए वहाँ बाहर बैठके की आवश्यकता नहीं थी। अगर कभी किसी समय कोई दूकानदार या दूसरा कोई गया, ऊपर बाबू के पास खबर जाती थी, बाबू नीचे उतर कर उससे मुलाकात कर जाते थे, इसलिए बाबू के बैठने के लिए नीचे एक कमरा था।

नीचे दरवाजे के पास खड़े होकर निशाकरदास ने आवाज दी, “कौन हो जी यहाँ?”

गोविन्दलाल के सेना और रूपा नाम के दो नौकर थे। आदमी का गला मुन कर दोनों दरवाजे के पास आये और निशाकर को देखकर विस्मित हुए—निशाकर को देखते ही, वे समझे, भले आदमी हैं। पहनावा निशाकर कुछ भड़कीला पहन कर गये थे। वैसे आदमी ने कभी वह डेहरी नहीं नाँची। देखकर दोनों नौकर एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। सेना ने पूछा, “आप किसे खोजते हैं?”

निशाकर—तुम्हीं लोगों को। बाबू को खबर दो कि एक भले आदमी मुलाकात करने आये हैं?

सेना—क्या नाम बतलाऊँगा?

निशा०—नाम की ज़रूरत क्या है? एक भले आदमी कहना।

नौकर जानते थे कि आजकल बाबू किसी भले आदमी से मुलाकात नहीं करते—वैसा स्वभाव ही नहीं। अस्तु नौकर खबर देने के बड़े इच्छुक नहीं थे। सेना इधर-उधर करने लगा। रूपा ने कहा, “आप किञ्चल के लिए आये हैं, बाबू किसी से मुलाकात नहीं करते।”

निशा०—तो फिर तुम लोग रहो, हम बिना खबर के ही ऊपर जा रहे हैं।

नौकर आकत में पड़े। कहा, “नहीं, महाशय, हमारी नौकरी चली जायगी।”

निशाकर ने तब एक रुपया निकाल कर कहा, “जो खबर देगा, उसके लिए यह रुपया है।”

सोना सोचने लगा,—रूपा चील की तरह झपट्टा मार कर निशाकर के हाथ से रुपया लेकर ऊपर खबर देने दौड़ा।

घर को घेर कर जो फुलवाड़ी है, वह बड़ी मनोहर है। निशाकर ने सोना से कहा, “हम इस फुलवाड़ी में टहल रहे हैं, एतराज न करना; जब आना, हमें वहाँ से पुकार लेना।” यह कह कर निशाकर ने सोना के हाथ में भी एक रुपया रखवा।

रूपा जब बाबू के पास था, तब किसी काम के कारण बाबू को अवकाश नहीं था, नौकर उन्हें निशाकर की खबर नहीं दे सका। इधर बगीचे में टहलते टहलते निशाकर ने एक बार निगाह उठाई, देखा, एक परमा सुन्दरी खिड़की पर खड़ी हुई उन्हें देख रही है।

निशाकर को देखकर रोहिणी ने सोचा, “यह कौन है? देखने पर जान पड़ता है, इस देश का आदमी नहीं; वेशभूषा और तौर-तरीके से मालूम देता है, बड़ा आदमी है। देखने में सुन्दर भी है। लेकिन क्या गोविन्दलाल से भी है? नहीं, ऐसा नहीं। गोविन्दलाल का रङ्ग गोरा है, लेकिन इसका मुँह और आँखें अच्छी हैं, खास तौर से आँखें। अहा! कैसा मुँह है! यह कहाँ से आया? हरिद्राग्राम का आदमी तो नहीं है—वहाँ के तो सभी को पहचानती हूँ। इससे दो बातें नहीं की जा सकती? हानि क्या है? मैं कभी गोविन्दलाल से विश्वासघात तो करूँगी नहीं।

रोहिणी इस तरह सोच रही थी, ऐसे समय निशाकर की आँखें उठते ही चार आँखें हो गईं। आँखों में कोई बातचीत हुई या

नहीं, हम नहीं कह सकते, जानने पर भी कहने की इच्छा नहीं; हमने सुना है, ऐसी बातचीत हुआ करती है।

ऐसे समय रूपा ने बाबू का अवकाश देखकर बाबू से कहा, “एक भले आदमी मुलाकात करने आये हैं।”

बाबू ने पूछा, “कहाँ से आये हैं ?

रूपा—यह मुझे नहीं मालूम।

बाबू—तो बिना पूछे खबर देने क्यों आया है ?

रूपा ने देखा, बेवकूफ बनना पड़ रहा है। हाज़िरजवाबी से कहा, “मैंने पूछा था। उन्होंने कहा, बाबू से ही कहेंगे।”

बाबू ने कहा, “तो जाकर कह, मुलाकात नहीं होगी।”

इधर निशाकर ने देर देखकर सन्देह किया, सोचा कि गोविन्द-लाल शायद मुलाकात करने से इनकार कर रहा है। परन्तु दुष्कृतकारी से सभ्यता भी क्यों करूँ ? मैं खुद ऊपर क्यों न चला जाऊँ ?

इस तरह विचार लड़ा कर नौकर के लौटने की प्रतीक्षा किये बिना ही निशाकर घर के भीतर फिर घुसे। देखा, सोना-रूपा कोई नीचे नहीं। तब वे बिना उद्वेग के जीने पर चढ़कर जहाँ गोविन्द-लाल, रोहिणी और दानिश खड़ा गवैये थे, वहाँ पहुँचे। उन्हें देखकर रूपा ने दिखला दिया कि यही बाबू मुलाकात करना चाहते थे।

गोविन्दलाल बड़े नाराज़ हुए। परन्तु देखा, सभ्य आदमी हैं। पूछा, “आप कौन हैं ?”

निशा०—मेरा नाम रासबिहारी दे है।

गोविन्द०—वास ?

निशा०—वराहनगर।

निशाकर जम कर बैठे। समझ गये थे कि गोविन्दलाल बैठने के लिए नहीं कहेंगे।

गोविन्द०—आप किसे खाजते हैं ?

शा०—आपको।

गोविन्द०—आप मेरे घर में जबरदस्ती न घुसकर अगर थोड़ी-सी प्रतीक्षा करते तो नौकर की जबानी मालूम करते कि मुझे मुलाकात का अवकाश नहीं ।

निशा०—अवकाश तो काफ़ी देख रहा हूँ । घुड़कियों और भभकियों से उठ जानेवाला आदमी होता तो आपके पास न आता । मैं जब आया हूँ, तब मेरी बात सुनने पर ही, आपत्ति टल जायगी ।

गोविन्द०—न सुनूँ, यही मेरी इच्छा है, लेकिन दो बातों में अगर समाप्त कर सकें, तो कह कर बिदा हों ।

निशा०—दो बातों में ही कहूँगा । आपकी स्त्री श्रीमती भ्रमर अपनी जायदाद ठेके पर उठायेंगी ।

दानिश खाँ गवैया तानपूरे में नया तार चढ़ा रहा था । वह एक हाथ से तार चढ़ाने लगा, दूसरे हाथ से उँगली गिनी और कहा, एक बात हुई ।

निशा०—मैं उसका ठेका लूँगा ।

दानिश खाँ ने उँगली गिनकर कहा, “दो बातें हुई ।”

निशा०—मैं इसके लिए आपके हरिद्राग्रामवाले मकान में गया था ।

दानिश खाँ ने कहा, “दो बातों से बढ़कर तीन बातें हुई ?”

निशा०—उस्ताद जी, सुअर गिन रहे हैं क्या ?

उस्ताद ने आँखें लाल करके कहा, “इस बेतमीज़ को यहाँ से निकालिए ।”

परन्तु बाबू साहब उस समय अनमने थे, बोले नहीं ।

निशाकर कहने लगे, “आपकी स्त्री ने मुझे ज़मीन का ठेका देना मञ्जूर किया है, लेकिन आपकी अनुमति पर है । उन्हें आपका पता भी नहीं मालूम, ज़त भी नहीं लिखना चाहती; इसलिए आपका मतलब मालूम करने का भार मुझ पर पड़ा है । बड़ी खोज के बाद आपका पता मालूम किया, आपकी आज्ञा लेने आया हूँ ।”

गोविन्दलाल ने कोई जवाब नहीं दिया, बहुत ही अन्यमनस्क हैं। बहुत दिन बाद उन्होंने भ्रमर की बात सुनी—उनकी वही भ्रमर ! प्रायः दो साल हो गये।

निशाकर कुछ कुछ समझे। फिर कहा, “आपकी अगर सम्मति है, तो एक सतर लिख दीजिए कि आपको कोई एतराज नहीं; तो मैं यहाँ से उठ जाऊँ।”

गोविन्दलाल ने कोई जवाब नहीं दिया। निशाकर समझे, फिर कहना पड़ा, फिर कुल बातें समझाकर कहीं, इस बार चित्त संयत करके गोविन्दलाल ने कुल बातें सुनीं। निशाकर की कुल बातें भूठी हैं, यह पाठक समझे होंगे। परन्तु गोविन्दलाल ऐसा नहीं समझे। पहले का उग्रभाव छोड़कर बोले, “मेरी अनुमति लेना अनावश्यक है। सम्पत्ति मेरी स्त्री की है, मेरी नहीं, शायद यह आपको मालूम है। उनकी जिन्हें इच्छा, ठेका देंगी, मेरा कोई विधिनिषेध इसमें नहीं। मैं कुछ लिखूँगा भी नहीं। जान पड़ता है, अब आप मुझे छुटकारा देंगे।”

लाचार निशाकर को उठना पड़ा। वे नीचे उतर गये। निशाकर के जाने पर गोविन्दलाल ने दानिश खाँ से कहा, “कुछ गाइए।”

मालिक की आज्ञा मिलने पर तानपूरे में स्वर बाँधकर दानिश खाँ ने पृष्टा, “क्या गाऊँ?”

“जो जी में आये” कहकर गोविन्दलाल ने तबला लिया। गोविन्दलाल पहले भी कुछ कुछ बजाना जानते थे। अब अच्छा बजाना सीखा था। परन्तु आज दानिश खाँ के साथ सङ्गत नहीं हुई। कुल तालें कट कट जाने लगीं। दानिश खाँ ने परेशान होकर तानपूरा रखकर गाना बन्द करते हुए कहा, “आज मैं थक रहा हूँ।” तब गोविन्दलाल ने एक सितार लेकर बजाने की कोशिश की, लेकिन गतें भूल भूल जाने लगीं। सितार रखकर उपन्यास पढ़ने लगे। मगर जो कुछ पढ़ते थे, उसका मतलब नहीं समझ

में आता था। तब किताब डालकर गोविन्दलाल शयन-गृह में गये। रोहिणी को नहीं देखा, परन्तु सोना नौकर पास था। दरवाजे से गोविन्दलाल ने सोना से कहा, हम अभी कुछ सोयेंगे, अपने आप न उठें तो जैसे कोई उठाये नहीं।”

यह कहकर गोविन्दलाल ने शयन-गृह का द्वार बन्द कर लिया। सन्ध्या प्रायः समाप्त होने को थी।

द्वार बन्द करके गोविन्दलाल सोये नहीं। पलंग पर बैठकर दोनों हाथों मुँह ढँके हुए रोने लगे।

वे क्यों रोये, यह हमें नहीं मालूम। भ्रमर के लिए रोये या अपने लिए, यह हम कह नहीं सकते; जान पड़ता है, दोनों के लिए।

रोना छोड़कर हमें तो गोविन्दलाल के लिए दूसरा उपाय नहीं देख पड़ता। भ्रमर के लिए रोने का रास्ता है, परन्तु भ्रमर के पास लौट जाने का उपाय नहीं। हरिद्राग्राम में अब मुँह दिखानेवाली बात नहीं रही। हरिद्राग्राम के रास्ते पर काँटे बिछ गये हैं। रोना छोड़कर और उपाय नहीं रहा।

सातवाँ परिच्छेद

जब निशाकर बड़े कमरे में आकर बैठे, तब लाचार होकर रोहिणी को बगलवाले छोटे कमरे में जाना पड़ा। मगर सिके आँखों की ओट हुई—कानों की नहीं। बातचीत जो हुई, सब रोहिणी ने कान लगाकर सुनी और दरवाजे का पर्दा कुछ हटाकर निशाकर को देखती रही। निशाकर ने भी देखा, पर्दे की आड़ से परचल की फाँकों-सी आँखें उन्हें देख रही हैं।

रोहिणी ने सुना, निशाकर अथवा रासविहारी हरिद्राग्राम से आये हैं। रूपा नौकर भी रोहिणी की तरह कुल बातें खड़ा हुआ सुन रहा था। निशाकर के उठ जाने पर ही रोहिणी ने पर्दे की बगल से मुँह निकालकर उँगली के इशारे से रूपा को बुलाया। रूपा के पास आने पर उसके कान में कहा, “जो कुछ कहूँ तू कर सकेगा? बाबू से कुल बातें छिपानी होंगी। जो कुछ करेगा, वह अगर बाबू कुछ मालूम न कर सकेंगे तो तुझे पाँच रुपये बख्शिश दूँगी।”

रूपा ने मन में सोचा, “आज न जाने किसका मुँह सुबह उठकर देखा था—आज तो, देख रहा हूँ, रुपया कमाने का दिन है, गरीब आदमी को दो पैसे आयें तभी अच्छा है।” खुलकर कहा, “जो कुछ कहेंगी, वही कर सकूँगा। क्या हुक्म देती हैं?”

रो०—उस बाबू के साथ उतर जा, वे मेरे पिता जी के मुत्क से आये हैं। वहाँ की कोई खबर मुझे कभी नहीं मिलती। इसके लिए कितना रोती हूँ। अगर देश से एक आदमी आया है, तो उससे अपने आदमियों की कुछ बातें—कुछ हाल मालूम कर लूँ। बाबू ने नाराज होकर उसे उठा दिया। तू जा, उसे बैठा। ऐसी जगह बैठा, जैसे बाबू नीचे जाने पर देख न पायें। कोई दूसरा न देखे। कुछ एकान्त मिलने पर ही मैं जाऊँगी। अगर बैठना न चाहें तो आरजू-मिन्नत करना।”

रूपा को बख्शिश की वू मिली है—“जो हुक्म” कहकर दौड़ा।

निशाकर किस अभिप्राय से गोविन्दलाल को छलने आये थे, हम नहीं कह सकते। वे नीचे उतरकर जैसे आचरण कर रहे थे, कोई बुद्धिमान अगर देखता तो उन पर बहुत अविश्वास करता। घर में घुसने का दरवाजा, ज़ञ्जीर, क़ब्ज़ा आदि बड़े गौर से देख रहे थे। ऐसे समय रूपा खानसामा आकर हाज़िर हुआ।

रूपा ने कहा, “क्या तम्बाकू पीजिएगा ?”

निशा०—बाबू ने तो पूछा नहीं, अब नौकर से लेकर क्या पियें ?

रूपा—जी, सो बात नहीं, एक बात एकान्त की है; जरा एकान्त में आइए ।

रूपा—निशाकर को साथ लेकर अपने निर्जन कमरे में ले गया । निशाकर भी बिना उज्रमाजरे के चले गये । वहाँ निशाकर को बैठाकर जो जो कुछ रोहिणी ने कहा था, रूपा ने कहा ।

निशाकर को हाथ बढ़ाकर आकाश का चाँद मिला । अपने अभिप्राय की सिद्धि का बड़ा सहज उपाय उन्होंने देखा । कहा, “बच्चू, सुनो, तुम्हारे मालिक ने तो हमें खदेड़ दिया है, हम उनके मकान में छिपकर रहें किस तरह ?”

रूपा—जी, उन्हें कुछ मालूम नहीं हो पायेगा । इस कमरे में वे कभी आते नहीं ।

निशा०—न आयें, लेकिन जब तुम्हारी मालकिन नीचे आयेंगी, उस समय यदि तुम्हारे बाबू सोचें, कहाँ गई, देखूँ ? यदि ऐसा सोचकर पीछे पीछे आयें, या किसी तरह अगर हमारे पास तुम्हारी मालकिन साहवा को देख लें, तो हमारी दशा क्या होगी ?

रूपा—चुप रहा । निशाकर कहने लगे, “इस मैदान के बीच, घर में डालकर, हमारी जान लेकर इस बगीचे में गाड़ रखने पर न माँ पुकारने के लिए कोई है, न बाप पुकारने के लिए । तब तुम्हीं हमें दो लाठी जमाओगे—इसलिए ऐसे काम में हम नहीं हैं । अपनी मालकिन को समझाकर कहो कि यह उनसे नहीं होगा,—एक बात और कहना । उनके चाचा ने कुछ बड़ी वज्रनदार बातें उनसे कहने के लिए हमसे कही थीं । तुम्हारी मालकिन साहवा से वे बातें कहने के लिए हम बड़े उतावले थे, मगर तुम्हारे बाबू ने हमें हटा ही दिया । हमारा कहना न हुआ, अब हम चले ।”

रूपा ने देखा, पाँच रुपये हाथ से निकले जा रहे हैं। कहा, “अच्छा, यहाँ न बैठिए, नहीं सही, क्या बाहर कुछ दूर पर नहीं बैठ सकते ?”

निशा०—हम भी यही बात सोच रहे थे। आते वक्त, तुम्हारी कोठी के पास नदी के किनारे एक पक्का घाट है, उसके पास मौलसिरी के दो पेड़ हैं, देख आये हैं। वह जगह पहचानते हो ?

रूपा—जी, हाँ।

निशा०—हम वहीं चल कर बैठते हैं। शाम हो गई है—रात होने पर वहाँ बैठने से किसी की नज़र एकाएक नहीं पड़ेगी। तुम्हारी मालकिन साहवा अगर वहाँ जा सकें, तो कुल हाल उन्हें मिल सकता है। ऐसा-वैसा देखा तो भग कर हम अपनी जान भी बचा लेंगे। घर में डाल कर हमें कुत्ते की मौत मारें, इसमें हमारी राय नहीं।

लाचार, रूपा नौकर ने, रोहिणी के पास जाकर, निशाकर ने जैसा कहा, वैसा निवेदन किया। इस समय रोहिणी के मन का भाव क्या है, यह हम नहीं कह सकते। जब आदमी अपने मन का भाव खुद नहीं समझ पाता, तब हम किस तरह कहेंगे कि रोहिणी के मन का भाव यह है। रोहिणी ब्रह्मानन्द को इतना प्यार करती थी कि उनकी खबर लिये बिना दिज्ञान-शून्य हो जायगी, ऐसा हमें नहीं मालूम। मुमकिन, और भी कुछ रहा हो। कुछ नज़रबाना, कुछ तोल-ताल हुई थी। रोहिणी ने देखा था कि निशाकर रूपवान् है—आँखें आम की फाँकें हैं। रोहिणी ने देखा था कि मनुष्यों में, मनुष्यत्व में, निशाकर बड़ा-चढ़ा है। रोहिणी के मन में दृढ़ सङ्कल्प था कि मैं गोविन्दलाल से विश्वास-घात नहीं करूँगी—परन्तु विश्वास-घात एक बात है, यह एक और बात। शायद उस महा पापिष्ठा ने सोचा था, “चकराया हुआ मृग देखने पर कौन व्याध व्यवसायी होकर उसे तीर से नहीं बेधेगा ?” सोचा था, “नारी होकर, जीतने लायक आदमी देखने पर कौन नारी उसे जीतने की इच्छा नहीं

करेगी ?” बाघ शिकार करता है, लेकिन कुल शिकार नहीं खाता । स्त्री भी पुरुष को जीतती है, लेकिन विजय-पताका उड़ाने के लिए । बहुतेरे मछली पकड़ते हैं, सिर्फ मछली पकड़ने के लिए, मछली खाते नहीं, दे देते हैं । बहुत-से लोग चिड़िया मारते हैं, सिर्फ मारने के लिए; मार कर डाल देते हैं । शिकार सिर्फ शिकार के लिए है, खाने के लिए नहीं । नहीं मालूम, इसमें क्या रस है । रोहिणी ने सोचा होगा, “यदि यह बड़ी बड़ी आँखोंवाला मृग इस प्रसादपुर के वन में आ पड़ा है, तो इसे शरविद्ध करके क्यों न छोड़ दूँ ?” नहीं मालूम, इस पापीयसी के पापी चित्त में क्या आया था । रोहिणी ने मञ्जूर किया कि प्रदोष के समय अवकाश पाने पर, छिपकर, अकेली, चित्रा के पक्के घाट पर निशाकर से चाचा की खबर मालूम करने जायगी ।

रूपा ने आकर निशाकर से कहा । निशाकर ने सुना, धीरे-धीरे हर्षोत्फुल्ल मन से उठे ।

आठवाँ परिच्छेद

रूपा के हट जाने पर निशाकर ने सोना को बुलाकर कहा, “तुम लोग बाबू के पास कितने दिन से हो ?”

सोना—यही—आप यहाँ जितने दिन से आये हैं, उतने दिन से ।

निशा०—तो थोड़े ही दिन हुए, पाते क्या हो ?

सोना—तीन रुपया महीना, खुराक और कपड़ा ।

निशा०—इतने कम वेतन पर तुम्हारे जैसे खानसामा को पूरा पड़ता है ?

बात सुनकर सोना खानसामा गल गया, कहा, “क्या करूँ ? यहाँ कहाँ नौकरी मिलती है ?”

निशा०—नौकरी की क्या चिन्ता, है ? हमारे मुल्क चलो तो तुम्हें लोक लें। पाँच, सात, दस रुपये सीधे सीधे पा जाओगे।

सोना—दया करके अगर साथ ले चलें।

निशा०—क्या ले चलने पर चलोगे ? ऐसे मालिक की नौकरी छोड़ दोगे ?

सोना—मालिक बुरे नहीं, लेकिन मालकिन बड़ी हरामजादी है।

निशा०—हमें तो हाथों हाथ इसका सुव्रत मिला है तो, हमारे साथ चलने का तुम्हारा इरादा पक्का है ?

सोना—हाँ, पक्का है।

निशा०—अच्छा, चलते समय मालिक का एक उपकार करते चलो मगर बड़ी सावधानी का काम है, कर सकोगे ?

सोना—अच्छा काम होगा तो क्यों नहीं कर सकूँगा ?

निशा०—तुम्हारे मालिक के हक में अच्छा है, मालकिन के हक में बहुत बुरा।

सोना—तो कहिए, देर न कीजिए, इसके लिए मैं राज़ी हूँ।

निशा०—तुम्हारी मालकिन ने हमारे पास कहला भेजा है, चित्रा के पक्के घाट पर, बैठे रहने के लिए, रात में छिपकर हमसे मिलेंगी। समझे ? हमने मंजूर कर लिया है। हमारा मतलब है, तुम्हारे मालिक की आँखें खोल दें। तुम चुपचाप यह बात अपने मालिक से कह आ सकते हो ?

सोना—अभी, यह पाप मिटने से ही निस्तार है।

निशा०—अभी नहीं, अभी हम घाट में चलकर बैठते हैं। तुम होशियार रहो। जब देखोगे, मालकिन घाट की तरफ चलीं, तब

चलकर मालिक से कह देना । रूपा कुछ मालूम न कर सके । फिर हमसे मिलना ।

“जो हुक्म” कहकर सेना ने निशाकर के पैरों की धूल ली । तब निशाकर भूमते हुए गजेन्द्र की चाल से चित्रा के किनारे के सोपान पर, चलकर बैठे । आँधरे में नत्तनों की छाया से प्रदीप्त चित्रा का जल चुपचाप बहा जा रहा है । चारों ओर स्यार कुत्ते आदि बहुविध रव कर रहे हैं । कहीं दूर की नाव पर बैठा हुआ धीवर ऊँचे स्वर से श्यामाविषयक गीत गा रहा है । निशाकर वह गीत सुन रहे हैं और गोविन्दलाल के रहनेवाले कमरे की खिड़कियों से निकलता हुआ दीप का उज्जल प्रकाश देख रहे हैं और मन-ही-मन सोच रहे हैं, “मैं क्या नृशंस हूँ । एक स्त्री को मिट्टी में मिलाने के लिए कितने दाब-पेच कर रहा हूँ । लेकिन नृशंसता भी क्या है ? दुष्ट का दमन अवश्य किया जाना चाहिए । जब मित्र की लड़की की जान बचाने के लिए यह काम करने के लिए मित्र से अङ्गीकार किया है, तब अवश्य करूँगा । परन्तु मेरा मन इसमें प्रसन्न नहीं । रोहिणी पापीयसी है, पाप का दण्ड दूँगा, पाप का बहाव रोकूँगा, इसमें अप्रसाद भी क्यों ? कह नहीं सकता, जान पड़ता है, सीधा रास्ता चलने पर इतना न सोचना पड़ता । टेढ़े रास्ते से चला हूँ, इसीलिए इतना संझोच हो रहा है । और पाप-पुण्य का दण्ड-पुरस्कार देने-वाला मैं कौन हूँ ? मेरे पाप-पुण्य का जो दण्ड-पुरस्कार दूँगे, वे रोहिणी के भी विचारक हैं । कह नहीं सकता, मुमकिन, उन्हींने मुझे इस कार्य में नियोजित किया हो । क्या मालूम—

“त्वया हृषीकेश हृदिस्थितेन

यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ।”

यह विचार करते करते रात का एक पहर बीत गया । तब निशाकर ने देखा, निःशब्द चरण-क्षेप से रोहिणी पास आकर खड़ी

हुई। निश्चय को और भी दृढ़ कर लेने के लिए निशाकर ने पूछा, “कौन हो?”

रोहिणी ने भी निश्चय को दृढ़ कर लेने के लिए पूछा, “तुम कौन हो?”

निशाकर ने कहा, “मैं रासविहारी हूँ।”

रोहिणी ने कहा, “मैं रोहिणी हूँ।”

निशा०—इतनी रात क्यों हुई?

रोहिणी—जरा देखे-सुने बिना तो आ नहीं सकती। क्या मात्स्य, कौन कहाँ से देख लेगा। लेकिन तुम्हें बड़ी तकलीफ हुई।

निशा०—तकलीफ हो, मन-ही-मन डर रहा था कि तुम शायद मूल गई।

रोहिणी—मैं अगर भूलनेवाली होती तो मेरी दशा ऐसी क्यों होती? एक आदमी को न भूल सकने के कारण इस देश में आई हूँ; और आज तुम्हें न भूल सकने के कारण यहाँ आई हूँ।

यह बात कह रही थी, ऐसे समय पीछे से किसी ने रोहिणी का गला पकड़कर दबाया। चौंककर रोहिणी ने पूछा, “कौन है रे!”

गम्भीर स्वर से किसी ने जवाब दिया, “तुम्हारा काल।”

रोहिणी पहचान गई कि गोविन्दलाल है। तब आसन्न विपत्ति समझकर, चारों तरफ अँधेरा देखकर भय-विकम्पित स्वर से कहा, “छोड़ो, छोड़ो, मैं घुरे मतलब से नहीं आई। मैं जिस कारण आई हूँ, इस बातू से न हो पूछो।”

यह कहकर रोहिणी ने जहाँ निशाकर बैठा था, उस जगह उँगली उठाकर दिखाया। फिर देखा, वहाँ कोई नहीं। गोविन्दलाल को देखकर निशाकर पलक मारते कहीं गायब हो गया है। रोहिणी विस्मित होकर बोली, “कहाँ, कोई भी तो नहीं।”

गोविन्दलाल ने कहा, “यहाँ कोई नहीं, हमारे साथ घर चलो।”

रोहिणी विषण्ण चित्त से गोविन्दलाल के साथ घर लौटी।

नवाँ परिच्छेद

घर लौटकर गोविन्दलाल ने नौकरों को मना किया, “कोई ऊपर न आना।”

उस्ताद जी डेरे गये थे।

रोहिणी को लेकर एकान्त शयनकक्ष में प्रवेश करके गोविन्दलाल ने द्वार बन्द किया; रोहिणी सामने नदी के बहाव से बेंत की तरह खड़ी काँपने लगी। गोविन्दलाल ने मधुर स्वर से कहा, “रोहिणी !”

रोहिणी ने कहा, “क्या ?”

गो०—तुमसे कुछ बातें हैं।

रो०—क्या ?

गो०—तुम मेरी कौन हो ?

रो०—कोई नहीं, जितने दिन रखिणगा, उतने दिन दासी हूँ, नहीं तो कोई नहीं।

गो०—पैर छोड़ कर तुम्हें सर पर रक्खा था। राजा का जैसा ऐश्वर्य, राजा से अधिक सम्पदा, निष्कलङ्क चरित्र, अत्याज्य धर्म, सब तुम्हारे लिए मैंने छोड़ा था; तुम क्या हो रोहिणी, जो तुम्हारे लिए यह सब छोड़कर मैं वनवासी हुआ ?—तुम क्या हो रोहिणी, जो तुम्हारे लिए भ्रमर,—संसार में अतुल, चिन्ता में सुख, सुख में अतृप्ति, दुःख में अमृत जो भ्रमर है, उसे छोड़ा ?

यह कहकर गोविन्दलाल दुःख और क्रोध का वेग सँभाल नहीं सके, रोहिणी को लात मारी।

रोहिणी बैठ गई। कुछ बोली नहीं। रोने लगी। परन्तु आँसू गोविन्दलाल की नज़र में नहीं पड़े।

गोविन्दलाल ने कहा, “रोहिणी, खड़ी होओ।” रोहिणी खड़ी हुई।

गो०—तुम एक बार मरने चली थीं, क्या फिर मरने की हिम्मत है ?

रोहिणी—तब मरने की इच्छा कर रही थी, बड़े कातर स्वर से बोली, “अब फिर क्यों नहीं मरना चाहूँगी ? भाग्य में जो था, हुआ ।”

गो०—तो खड़ी रहो, हिलो नहीं ।

रोहिणी खड़ी रही ।

गोविन्दलाल ने पिस्तौल का बाक्स खोला, पिस्तौल निकाली, पिस्तौल भरी थी । भरी ही रहती थी ।

पिस्तौल लेकर रोहिणी के सामने लगाकर गोविन्दलाल ने पूछा, “क्यों, मर सकेगी ?”

रोहिणी सोचने लगी । जिस दिन अनायास, अक्लेश, वारुणी के जल में डूब मरने गई थी, वह दिन आज रोहिणी भूली । वह दुःख नहीं, इसलिए वह साहस भी नहीं । सोचा, मरूँगी क्यों ? न हो ये छोड़ देंगे, छोड़ दें । इन्हें कभी भूलूँगी नहीं, लेकिन इसलिए मरूँगी क्यों ?

रोहिणी ने कहा, “मरूँगी नहीं, मारिए नहीं, पैरों में जगह न दीजिए तो बिदा दीजिए ।

गो०—देता हूँ ।

यह कहकर गोविन्दलाल ने पिस्तौल सीधी करके रोहिणी के माथे का निशाना साधा ।

रोहिणी रो उठी । कहा, “मारो नहीं, मारो नहीं । मेरी नई उम्र, नया सुख है । मैं तुम्हें और मुँह नहीं दिखाऊँगी, और तुम्हारे रास्ते नहीं आऊँगी । अभी जाती हूँ, मुझे मारो नहीं ।”

गोविन्दलाल की पिस्तौल में खट से शब्द हुआ । इसके बाद बड़ा शब्द, इसके बाद सब अधेरा । रोहिणी के प्राणपखेरू उड़ गये, शरीर भू-लुण्ठित हो गया ।

पिस्तौल ज़मीन में डालकर गोविन्दलाल बड़े द्रुतवेग से घर से निकल गये ।

पिस्तौल की आवाज़ सुनकर रूपा वगैरह नौकर देखने दौड़े । देखा, बालक के नाखून से नोचे कमल की तरह रोहिणी का मृत शरीर कर्श पर लोट रहा है । गोविन्दलाल कहीं नहीं ।

दसवाँ परिच्छेद

दूसरा साल

उसी रात को चौकीदार ने थाने में रपोट की कि प्रसादपुर की कोठी में खून हुआ है । सौभाग्य से थाना वहाँ से छः कोस दूर था । दारोगा को आते हुए दूसरे दिन पहर भर दिन चढ़ आया । आते ही वे खून की तहकीकात करने लगे । मौजूदा स्थिति और लाश की जाँच करके उन्होंने बाकायदा रपोट लिख कर भेजी । बाद को रोहिणी की लाश बँधवा कर बैलगाड़ी से चौकीदार के साथ अस्पताल भेज दी । फिर नहा-धोकर भोजन किया । बाद को निश्चिन्त होकर अपराधी की खोज करने लगे । कहाँ अपराधी ? गोविन्दलाल रोहिणी को गोली मार कर ही घर से निकले थे, फिर नहीं आये । एक रात और एक दिन का अवकाश पाकर कहाँ—कितनी दूर गये, यह कौन कह सकता है ? किसी ने उन्हें नहीं देखा । किस तरफ भगे, किसी को मालूम नहीं । उनका नाम तक किसी को नहीं मालूम । गोविन्दलाल ने प्रसादपुर में कभी अपना नाम-धाम नहीं ज़ाहिर किया । वहाँ चुन्नोलाल दत्त नाम ज़ाहिर किया था । किम ज़िले से आये थे, यह नौकर अब तक नहीं जानते थे । दारोगा कुछ दिनों तक इसे-उसे पकड़ कर बयान लिखते-लिखाते रहे । गोविन्दलाल का

कोई पता नहीं लगा सके। अन्त में उन्होंने, असामी करार है, लिख कर आखिरी रपोट पेश की।

तब यशोहर से किचल खाँ नाम के एक सुदत्त खुफिया इन्स्पेक्टर भेजे गये। किचल खाँ की तहकीकात का सविस्तर वर्णन हम ज़रूरी नहीं समझते। मकान की तलाशी लेते उन्हें कुछ खत और कागजात मिले, जिनसे गोविन्दलाल का असली नाम और पता मालूम किया गया। कहना नहीं होगा कि वे कष्ट स्वीकार करके छद्मवेश से हरिद्राग्राम तक गये। परन्तु गोविन्दलाल हरिद्राग्राम नहीं गये। फलतः किचल खाँ वहाँ गोविन्दलाल को न पाकर लौट आये।

इधर निशाकरदास उस कराल काल-रात्रि में विपन्ना रोहिणी को छोड़ कर प्रसादपुर के बाज़ार में अपने डेरे पर आकर उपस्थित हुए। वहाँ माधवीनाथ उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। माधवीनाथ गोविन्दलाल से सुपरिचित थे, इसलिए स्वयं उनके पास नहीं गये; अब, निशाकर ने आकर, सविशेष उनसे कहा। सुनकर माधवीनाथ ने कहा, “काम अच्छा नहीं हुआ। एक खून-खराबा हो सकता है।” इसका परिणाम क्या होता है, मालूम करने के लिए, दोनों प्रसादपुर के बाज़ार में, छिप कर बड़ी सावधानी से रहने लगे। सुबह को सुना कि चुन्नीलाल दत्त अपनी स्त्री का खून करके भग गया है। वे लोग बहुत घबराये और दुःखी हुए। घबराहट गोविन्दलाल के लिए हुई। परन्तु बाद को दंखा, दारोगा कुछ कर नहीं सके। गोविन्दलाल का कोई पता नहीं। तब वे लोग एक तरह निश्चिन्त होकर फिर भी बड़े उदास मन से, अपने यहाँ के लिए रवाना हुए।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

तीसरा साल

भ्रमर मरी नहीं। क्यों नहीं मरी, यह हमें नहीं मालूम। इस संसार में विशेष दुःख यह है कि मरने के उपयुक्त समय में कोई नहीं मरता, सब अममय में मरते हैं। भ्रमर नहीं मरी शायद यही उसका कारण है। कुछ हो, भ्रमर उत्कट रोग से कुछ मुक्त हो गई है। भ्रमर फिर पिता के यहाँ है। माधवीनाथ गोविन्दलाल का जो संवाद ले आये थे, उनकी पत्नी ने बड़े छिपाव से अपनी बड़ी लड़की—भ्रमर की बहन—से कहा था। उनकी बड़ी लड़की ने बड़े छिपाव से वह संवाद भ्रमर से कहा था; इस समय भ्रमर की बड़ी बहन यामिनी कह रही थी, “अब वे हरिद्राग्राम के मकान में क्यों न आकर रहें ? इस तरह शायद कोई विपत्ति नहीं रह जायगी।”

भ्रमर—विपत्ति क्यों नहीं रह जायगी ?

यामिनी—वे प्रसादपुर में नाम बदलकर रहते थे। वही गोविन्दलाल बाबू हैं, यह तो कोई जानता नहीं।

भ्रमर—तुमने सुना नहीं क्या, हरिद्राग्राम में भी पुलिस के आदमी उनकी खोज में आये थे ? फिर उन्हें मालूम नहीं कैसे ?

यामिनी—मालूम है तो हो। फिर भी यहाँ आकर अपने विषय पर अपनी जायदाद सँभालने पर रूपया हाथ में रहेगा। पिता जी कहते हैं, पुलिस रुपये के अधीन है।

भ्रमर रोने लगी। कहा, वह परामर्श उन्हें कौन दे ? कहाँ उनसे मुलाकात होगी कि यह सलाह उन्हें दूँ ? पिता जी ने एक बार उनका पता लगाया था—क्या फिर एक बार पता लगा सकते हैं ?”

यामिनी—पुलिस के आदमी कितना पता रखते हैं, वही जब दिन-रात पता लगाते हुए टोह नहीं पा रहे, तब पिता जी किस तरह पता लगायेंगे ? लेकिन हमें जान पड़ता है, गोविन्दलाल बाबू

आप हरिद्राग्राम में आकर बैठेंगे। प्रसादपुर की उस घटना के बाद ही अगर वे हरिद्राग्राम में आ जाते, तो प्रसादपुर के वही बाबू हैं, इस बात पर लोगों को विश्वास हो जाता इसी लिए जान पड़ता है, इतने दिन वे नहीं आये। अब आयेंगे, ऐसा भरोसा किया जा सकता है।

भ्रमर—मुझे कोई भरोसा नहीं।

यामिनी—अगर आवें ?

भ्रमर—अगर यहाँ आने पर उनका मङ्गल हो, तो देवता से मैं मन-वाणी-कर्म से प्रार्थना करती हूँ, वे आयें। अगर न आने पर उनका कल्याण हो, तो मन-वाणी-कर्म से प्रार्थना करती हूँ, इस जन्म में उनका हरिद्राग्राम आना न हो। वे जिससे निरापद रहें, ईश्वर उन्हें वही मति दे।

या०—मेरी समझ से, बहन, तुम्हारा वहीं रहना जरूरी है। नहीं मालूम, किस दिन वे रुपये के लिए आ पहुँचें ? अगर भ्रमरों पर अविश्वास करके उनसे न मिलें ? तुम्हें न देखने पर वे लौट जा सकते हैं।

भ्र०—मुझे यह रोग है। कब मरूँ, कब तक जीऊँ, मैं वहाँ किसके सहारे रहूँगी ?

या०—कहो, तो हम कोई वहाँ चलकर रहें, फिर भी तुम्हारा वहीं रहना कर्तव्य है।

सोचकर भ्रमर ने कहा, “अच्छा, मैं हरिद्राग्राम जाऊँगी। माँ से कहना, कल ही मुझे भेज दें। अभी तुममें किसी को नहीं जाना होगा। परन्तु मेरी विपत्ति के दिन तुम लोग आना।”

या०—कैसी विपत्ति भ्रमर ?

भ्रमर रोती हुई बोली, “अगर वे आयें ?”

या०—वह फिर विपत्ति कौन-सी है, भ्रमर ? तुम्हारा खोया धन यदि घर लौट आये, तो इससे आनन्द की बात और क्या होगी ?

अ०—आनन्द, दीदी, आनन्द की बात मेरे लिए अब कौन-सी है ?

अमर ने और बातचीत नहीं की। उसके मन की बात यामिनी कुछ नहीं समझी। अमर का मर्मन्तक रोदन यामिनी कुछ नहीं समझी। अमर को मानस नेत्रों से धूममय चित्रवत् इस काण्ड का अन्त दिखलाई पड़ा। यामिनी ने कुछ नहीं देखा। यामिनी नहीं समझी कि गोविन्दलाल हत्याकारी है, अमर यह भूल नहीं रही।

बारहवाँ परिच्छेद

पाँचवाँ साल

अमर फिर ससुर के यहाँ गई। यदि पति आयें, इसकी नित्य प्रतीक्षा करने लगी। परन्तु पति तो नहीं आये। दिन गये, मास गये,—पति नहीं आये, कोई खबर भी नहीं आई। इस प्रकार, तीसरा साल भी पार हो गया। गोविन्दलाल नहीं आया। इसके बाद चौथा साल भी पार हो गया, गोविन्दलाल नहीं आया। इधर अमर की पीड़ा भी बढ़ने लगी। दमा, खाँसी, रोग—नित्य शरीर का क्षय—यम आगे बढ़ा हुआ—जान पड़ता है, इस जन्म में मुलाकात नहीं होगी।

इसके बाद पाँचवाँ साल शुरू हुआ। पाँचवें साल बड़ा भारी शोर-गल मचा। हरिद्राग्राम में संवाद आया कि गोविन्दलाल पकड़ गया है। संवाद आया कि गोविन्दलाल वैरागी के वेश से वृंदावन में वास कर रहा था—वहीं से पुलिस पकड़कर यशोहर ले आई है, यशोहर में उसका विचार होगा।

लोक-मुख से अमर ने यह संवाद सुना। लोगों के बात उठाने

का सूत्र यह है:—गोविन्दलाल ने भ्रमर के दीवान जी को पत्र लिखा था, “मैं जेल चला—मेरी पैत्रिक सम्पत्ति से मेरी रक्षा के लिए रुपया खर्च करना यदि तुम लोगों की सम्मति से उचित हो, तो यही समय है। मैं इसके योग्य नहीं हूँ। मेरी जीने की इच्छा नहीं, लेकिन फाँसी पर न लटकना पड़े, यह भिन्ना है। यह बात लोगों से घर में कहलाना, मैंने खत लिखा है, यह जाहिर न करना।” दीवान जी ने पत्र की बात नहीं जाहिर की—लोगों का कहना है, कहकर अन्तःपुर में संवाद भेजा।

भ्रमर ने सुनकर ही पिता को बुला लाने के लिए आदमी भेजा। माधवीनाथ सुनते ही लड़की के पास आये। भ्रमर ने उन्हें नोट और कागज़ से पचास हजार रुपया देकर सजल नयनों से कहा, “पिता जी, अब जो कुछ करना हो, करो; देखना, मुझे आत्म-हत्या न करनी पड़े।”

माधवीनाथ ने भी रोते हुए कहा, “बेटी, निश्चिन्त रहो—हम आज ही यशोहर जा रहे हैं। कोई चिन्ता न करना। गोविन्दलाल ने खून किया है, इसका कोई प्रमाण नहीं। हम प्रतिज्ञा करके जा रहे हैं कि तुम्हारा अड़तालीस हजार रुपया बचा लायेंगे—जामाता को गाँव ले आयेंगे।”

माधवीनाथ ने यशोहर यात्रा की। सुना कि प्रमाण की अवस्था बड़ी भयङ्कर है। इन्स्पेक्टर फिचल खाँ ने तहकीकात करके गवाहों को चालान से भेजा है। उन्होंने, रूपा-सोना आदि जो गवाह सही बातें जानते थे, उनमें से किसी का भी पता नहीं पाया। सोना निशाकर के पास था—रूपा किस देश को गया था, किसी को नहीं मालूम। सुबूत का यह हाल देखकर फिचल खाँ ने कुछ नक़द खर्च करके तीन गवाह तैयार किये थे। गवाहों ने मैजिस्ट्रेट साहब से कहा, “हम लोगों ने अपनी आँखों देखा है कि गोविन्दलाल उर्फ चुन्नीलाल ने अपने हाथ पिस्तौल दागकर रोहिणी का खून किया

है। हम लोग उस वक्त वहाँ गाना सुनने गये थे।” मैजिस्ट्रेट साहब अहल विलायती हैं, सुशासन के लिए सरकार से सदा तारीफ पाया करते हैं—इस सुव्रत पर उन्होंने गोविन्दलाल को विचार के लिए सेशन-सिपुर्द किया। जब माधवीनाथ यशोहर पहुँचे, उस समय गोविन्दलाल जेल में सड़ रहे थे। माधवीनाथ कुल वृत्तान्त मालूम कर बहुत दुखी हुए।

उन्होंने गवाहों के नाम-धाम मालूम किये, उनके घर गये। कहा, “सुनो, मैजिस्ट्रेट साहब से जो कुछ कहा, वह रुहा; अब जज साहब से दूसरी तरह कहना होगा। कहना होगा कि हम लोग कुछ नहीं जानते। यह लो पाँच-पाँच सौ रुपये नक़द। असामी छूट जाने पर और पाँच-पाँच सौ देंगे।”

गवाहों ने कहा, “ज़िलाफ़ हलक़ उठाने की वजह हम जो फ़ैसेंगे।”

माधवीनाथ ने कहा, “डरो नहीं। हम रुपया खर्च करके गवाहों से साबित करेंगे कि फिचल खाँ ने मारपीट कर मैजिस्ट्रेट की इजलास में तुमसे झूठी गवाही दिलवाई है।”

गवाहों ने चौदह पुश्तों में कभी हजार रुपया एक जगह नहीं देखा। उसी वक्त राज़ी हो गये।

सेशन में विचार का दिन आ पहुँचा। गोविन्दलाल कठघरे में थे। पहले गवाह ने आकर हलक़ उठाया। सरकारो वकील ने उससे पूछा, “तुम इस गोविन्दलाल उर्फ़ चुन्नीलाल को पहचानते हो?”

गवाह—कड़ा—नहीं,—याद तो नहीं आती।

वकील—कभी देखा है?

गवाह—नहीं।

वकील—रोहिणी को पहचानते थे?

गवाह—कौन रोहिणी?

वकील—प्रसादपुर की कोठी में जो थी।

गवाह—अपने पिता के वक्त से कभी प्रसादपुर की कोठी में नहीं गया ।

वकील—रोहिणी किस तरह मरी है ?

गवाह—सुना है कि आत्महत्या की है ।

वकील—खून के मामले में कुछ जानते हो ?

गवाह—कुछ नहीं ।

वकील ने तब, जो बयान मैजिस्ट्रेट के सामने गवाह ने दिया था, उसे पढ़कर सुनाते हुए पूछा, “क्यों तुमने मैजिस्ट्रेट साहब के यहाँ ये बयान दिये थे ?”

गवाह—जी, हाँ ।

वकील—अगर कुछ जानते नहीं, तो ऐसे बयान क्यों दिये ?

गवाह—मार की वजह । किचल खाँ ने मारकर हमारी नसें ढीली कर दी थीं ।

यह कहकर गवाह कुछ रोया । दो-चार रोज पहले सगे भाई से ज़मीन के मामले में तकरार और मारपीट हुई थी, उसके दाग़ बदन में थे । गवाह ने बिना हिचक के, वे दाग़ किचल खाँ की मार के दाग़ हैं, कहकर जज साहब को दिखला दिये ।

अप्रतिभ होकर सरकारी वकील ने दूसरा गवाह बुलाया । दूसरे ने भी वैसा ही कहा । वह पीठ पर राँगेवाली तसवीर का गोंद लगाकर घाव बना लाया था—हज़ार रुपये के लिए सब कुछ किया जा सकता है—घाव जज साहब को दिखाया ।

तीसरा गवाह भी वैसा ही गुज़रा । सुबूत न मिलने पर जज साहब ने असामी को छोड़ दिया और किचल खाँ पर असन्तुष्ट होकर उनके आचरण के सम्बन्ध में तहकीकात करने के लिए मैजिस्ट्रेट साहब को उपदेश दिया ।

विचार के समय गवाहों की ऐसी विपत्तता देखकर गोविन्दलाल विस्मित हुए थे । बाद को भीड़ के भीतर जब माधवीनाथ को

देखा, तब सब समझ गये । छूट कर भी उन्हें एक बार और जेल जाना पड़ा, वहाँ जेलर को परवाना मिलने पर वह छोड़ेगा । वे जब जेल को लौट रहे थे, तब माधवीनाथ ने उनसे कान में कहा, “जेल से छूटकर हमसे मिलना । हम फलाँ जगह हैं ।” परन्तु गोविन्दलाल जेल से छूटकर माधवीनाथ के यहाँ नहीं गये । कहाँ गये, किसी ने नहीं जाना । माधवीनाथ ने चार-पाँच दिन उनकी खोज की । कोई खबर नहीं मिली ।

अन्त में लाचार होकर अकेले हरिद्राग्राम लौट आये ।

—

तेरहवाँ परिच्छेद

माधवीनाथ ने आकर भ्रमर को संवाद दिया कि गोविन्दलाल छूट गया है, लेकिन मकान नहीं आया, कहीं चला गया है, कोई पता नहीं लग सका । माधवीनाथ के हट जाने पर भ्रमर बहुत रोई; परन्तु क्यों रोई, हम नहीं कह सकते ।

इधर गोविन्दलाल छूटकर प्रसादपुर गये, जाकर देखा, प्रसादपुर के घर में कुछ नहीं, कोई नहीं । जाकर सुना कि अट्टालिका में उनकी जो द्रव्य-सामग्रियाँ थीं, उनका कुछ हिस्सा आदमियों ने लूट लिया था बाक़ी लावारिस बतलाकर नीलाम कर दिया गया था । सिर्फ़ मकान पड़ा है । उसके भी दरवाज़े-देहलियाँ लोग ले गये हैं । प्रसादपुर के बाज़ार में दो दिन रहकर मकान की ईंट-लकड़ी आदि पानी के मोल एक आदमी को बेच दी और जो कुछ मिला, लेकर कलकत्ता चले गये ।

कलकत्ते में छिपकर बहुत साधारण अवस्था से गोविन्दलाल दिन पार करने लगे । प्रसादपुर से बहुत थोड़ा ही रुपया लाये थे, वह एक

साल में चुक गया। अब दिन चलने की सम्भावना नहीं। अस्तु छः साल के बाद गोविन्दलाल ने मन में सोचा, भ्रमर को एक पत्र लिखूँगा।

गोविन्दलाल कलम, दावात और कागज़ लेकर भ्रमर को खत लिखने बैठे। हम सच कहेंगे, गोविन्दलाल पत्र लिखना शुरू करते रोये। रोते हुए सोचा, भ्रमर आज तक जीती है, इसका क्या पता? किसे पत्र लिखूँ। इसके बाद सोचा, एक दफा लिखकर ही देखूँ। न हो मेरा पत्र लौट आयेगा, तब समझूँगा कि भ्रमर नहीं।

क्या लिखूँ, यह बात गोविन्दलाल कितनी देर तक सोचते रहे, यह नहीं कहा जा सकता। इसके बाद अन्त में सोचा, जिसे बिना दोष ही जन्म भर के लिए छोड़ दिया है, उसे जो जी में आये वही लिखने से क्या हानि है? गोविन्दलाल ने लिखा;—

“भ्रमर !

छः साल के बाद यह पामर तुम्हें फिर पत्र लिख रहा है। जी में आये पढ़ना, जी में आये, फाड़कर फेंक देना। मेरे भाग्य में जो जो घटित हुआ है, शायद कुल तुम सुन चुकी हो। यदि कहूँ, यह मेरा कर्मफल है, तुम सोच सकती हो, मैं तुम्हारा मन रखने के लिए यह बात कह रहा हूँ क्योंकि आज मैं तुम्हारे पास भिलुक हूँ।

“मैं इस समय निःस्व हूँ। तीन साल भीख माँग कर दिन पार किये हैं। तीर्थ में था, वहाँ भीख मिलती थी। यहाँ भीख नहीं मिलती, फलतः मैं भूखों मर रहा हूँ।

“मेरे जाने की एक जगह थी, काशी में मा की गोद। लेकिन मा को काशी-प्राप्ति हो गई है, शायद यह तुम्हें मालूम है। अस्तु मेरे लिए अब और जगह नहीं। अन्न भी नहीं।

“इसी लिए मैंने सोचा है, फिर हरिद्राग्राम में यह काला मुँह दिखाऊँगा, नहीं तो खाने को नहीं मिल रहा। जो तुम्हें बिना अपराध के छोड़कर दूसरी स्त्री से फँसा, स्त्री-हत्या तक की, उसे

अब और लाज क्या है ? जो अन्नहीन है, उसे लाज भी कैसी ? मैं यह काला मुँह दिखा सकता हूँ, लेकिन तुम सम्पत्ति की अधिकारिणी हो—मकान तुम्हारा है—मैंने तुमसे बैर किया है, क्या मुझे तुम जगह दोगी ?

“पेट के कारण तुम्हारा सहारा चाहता हूँ, क्या नहीं दोगी ?”

पत्र लिखकर तरह तरह के विचार लड़ाते हुए गोविन्दलाल ने पत्र डाकखाने में छोड़ दिया । यथासमय पत्र भ्रमर के पास पहुँचा ।

पत्र पाते ही भ्रमर हस्ताक्षर पहचान गई । पत्र खोलकर काँपते हुए भ्रमर ने शयन-गृह का दरवाजा बन्द किया । फिर एकान्त में बैठकर आँसुओं की सहस्रों धारायें पोंछते पोंछते वह पत्र पढ़ा । एक बार, दो बार, सौ बार, हजार बार पढ़ा । उस दिन भ्रमर ने फिर द्वार नहीं खोला । जो लोग भोजन के लिए बुलाने आये थे, उनसे कहा, “मुझे बुखार है, भोजन नहीं करूँगी ।” भ्रमर को सदा बुखार आता है, लोगों ने विश्वास कर लिया ।

दूसरे दिन सारी रात जगकर भ्रमर जब पलंग से उठी, तब उसे सचमुच ही बुखार था । परन्तु चित्त स्थिर-विकार-रहित था । खत का जवाब जो कुछ लिखना था, पहले ही निश्चित हो चुका था । भ्रमर ने हजारों बार सोचकर निश्चय किया था, इस समय सोचना नहीं पड़ा । पाठ तक निश्चित कर रक्खा था ।

“सेविका” पाठ नहीं लिखा । परन्तु पति सभी हालत में प्रणाम्य हैं, इसलिए लिखा,—

“प्रणामा शत सहस्र निवेदनञ्च विशेष”

इसके बाद लिखा, “आपका पत्र मिला । सम्पत्ति आपकी है । मेरी होने पर भी मैंने उसका दान किया है ।—चलने के समय आपने वह दानपत्र फाड़ डाला था, आपको याद होगा । परन्तु रजिस्ट्री आफिस में उसकी नक़ल है । मैंने दान किया है, यह सिद्ध है । वह अब भी पायेदार है ।

“अस्तु आप बिना किसी विघ्नबाधा के हरिद्राग्राम में आकर अपनी सम्पत्ति पर काबिज हो सकते हैं। मकान आपका है।

“और इस पाँच साल के अरसे में मैंने बहुत रुपया जमा कर लिया है। वह भी आपका है। आकर ग्रहण कीजिए।

“उस रुपये में कुछ मैं आपसे माँगती हूँ। उससे आठ हजार रुपया मैंने लिया। तीन हजार रुपये से गङ्गा के किनारे मैं एक मकान बनवाऊँगी, पाँच हजार रुपये में अपना जीवन-निर्वाह करूँगी।

“आपके आने के कुल इन्तजाम करके मैं नैहर जाऊँगी। जब तक मेरा मकान तैयार न हो, तब तक मैं नैहर रहूँगी। आपसे इस जन्म में मेरी मुलाकात होने की सम्भावना नहीं। इससे मैं खुश हूँ,—आप भी खुश हैं, इसमें मुझे सन्देह नहीं।

“आपके दूसरे पत्र की प्रतीक्षा में मैं रही।”

यथासमय पत्र गोविन्दलाल को मिला। कितना भयानक पत्र जरा भी कोमलता नहीं, गोविन्दलाल ने भी लिखा था, छः साल के बाद लिख रहा हूँ, परन्तु भ्रमर के पत्र में वैसी बात एक भी नहीं। वही भ्रमर !

पत्र पढ़कर, गोविन्दलाल ने उत्तर लिखा, “मैं हरिद्राग्राम नहीं जाऊँगा। जिससे यहाँ मेरे दिन पार हों, ऐसी मासिक भित्ति यहाँ भेजवा देना।”

भ्रमर ने जवाब लिखा, “महीने महीने आपको पाँच सौ रुपये भेजे जायेंगे। और भी अधिक भेज सकती हूँ, परन्तु अधिक रुपया भेजने पर उसके अपव्यय होने की सम्भावना है। और मेरा एक निवेदन है, साल साल लावारिस माल और ज़मीन बढ़ती जा रही है, आप यहाँ आकर इनका भोग करें। मेरे लिए देश न छोड़िए—मेरे दिन समाप्त हो आये हैं।”

गोविन्दलाल कलकत्ते में ही रहे। दोनों समझे, यही अच्छा है।

चौदहवाँ परिच्छेद

सचमुच, भ्रमर के दिन समाप्त हो आये थे। बहुत दिनों से भ्रमर की प्राणहर व्याधि इलाज के कारण उपशमित थी। परन्तु रोग पर दवा का असर और नहीं हुआ। अब भ्रमर दिन पर दिन क्षीण होने लगी। अगहन के महीने में भ्रमर ने चारपाई ली, अब चारपाई छोड़ कर नहीं उठती। माधवीनाथ स्वयम् आकर पास रहकर निष्फल चिकित्सा कराने लगे। यामिनी हरिद्राग्राम-वाले मकान में आकर बहन की अन्तिम शुश्रूषा करने लगी।

रोग ने इलाज नहीं माना। पूस का महीना ऐसे ही बीता। माघ के महीने में भ्रमर ने दवा का सेवन छोड़ दिया, दवा खाना अब व्यर्थ है। यामिनी से कहा, “अब और दवा का सेवन नहीं करूँगी। दीदी—सामने फागुन का महीना है—फागुन की पूर्णिमासी रात में जैसे मरूँ। देखना दीदी, जैसे फागुन की पूर्णिमा भग्न न जाय, अगर देखो कि पूर्णिमा की रात पार कर रही हूँ तो मुझे एक ताना देते न भूलना, रोग से हो, ताने से हो, फागुन की चाँदनी रात में मरना होगा। दीदी, जैसे याद रहे।”

यामिनी रोई, परन्तु भ्रमर ने और दवा नहीं पी। दवा नहीं पीती—रोग की भी शान्ति नहीं, लेकिन भ्रमर दिन-दिन प्रफुल्लित होने लगी।

इतने दिन के बाद भ्रमर ने फिर मज्जाक शुरू किया। छः साल के बाद यह पहले पहल छेड़ की थी। गुल होने से पहले दीपक जगा।

जितना दिन पार होने लगे, अन्तिम दिन जितना पास आने लगा भ्रमर उतना स्थिर, प्रफुल्ल और हास्यमूर्ति होने लगी। अन्त में वह भयङ्कर कालरात्रि आ पहुँची। पुर के लोगों की चञ्चलता और यामिनी का रोना देखकर भ्रमर समझी, आज शायद दिन

समाप्त हुआ। देह में पीड़ा भी वैसी ही मालूम देने लगी। भ्रमर ने यामिनी से कहा, “आज अन्तिम दिन है।”

यामिनी रोई। भ्रमर ने कहा, “दीदी, आज अन्तिम दिन है—मेरी कुछ भिन्ना है—बात रखना।”

यामिनी रोने लगी। बातचीत नहीं की।

भ्रमर ने कहा, “मेरी एक भीख है, आज रोओ नहीं—मेरे मर जाने पर रोना—मैं रोकने नहीं आऊँगी—परन्तु आज तुम लोगों से जो कुछ बातें कर सकूँ, बिना बाधा के कहकर मरूँगी, साध हो रही है।”

यामिनी आँसू पोंछकर बैठी, परन्तु गला भर जाने के कारण और बातचीत नहीं कर सकी।

भ्रमर कहने लगी,—“एक भीख और है—तुम्हारे सिवा और कोई यहाँ न आये। समय पर सबसे मुलाकात करूँगी, लेकिन इस समय और कोई न आये। तुमसे और बातचीत नहीं कर पाऊँगी।”

यामिनी और कब तक आँसू रोकेगी ?

क्रमशः रात होने लगी। भ्रमर ने पूछा, “रात क्या चाँदनी है, दीदी ?”

यामिनी ने झरोखा खोलकर कहा, “बड़ी सुन्दर चाँदनी निकली है।”

भ्र०—तो कुल झरोखे खोल दो—मैं चाँदनी देखती हुई मरूँ। देखो तो, उस खिड़की के नीचे जो फूलवाड़ी है, उसमें फूल खिले हैं या नहीं ?

उसी खिड़की के पास खड़ी होकर भ्रमर सुबह को गोविन्दलाल से बातचीत करती थी। सात साल से भ्रमर उस खिड़की की तरफ नहीं गई—वह खिड़की नहीं खोली।

यामिनी ने दुःख से वह खिड़की खोलकर कहा, “कहाँ, यहाँ

तो फुलवाड़ी नहीं, यहाँ तो सिर्फ घास उगी है, और दो-एक अधमरे पेड़ हैं, उनमें फूल-पत्ते कुछ नहीं।”

भ्रमर ने कहा, ‘सात साल हुए, वहाँ फुलवाड़ी थी। बिना मरम्मत के उजड़ गई है। मैंने, सात साल हुए, देखभाल नहीं की।’

बहुत देर तक भ्रमर चुपचाप रही। इसके बाद कहा, “जहाँ से हो, दीदी, आज मुझे फूल मँगा देने होंगे। देखती नहीं, आज फिर मेरी फूलशाय्या* है।”

यामिनी ने वैसा ही किया। तब भ्रमर की आँखों से आँसू गिरने लगे। यामिनी ने पूछा, “रोती हो क्यों, बहन?”

भ्रमर ने कहा, “दीदी, एक बड़ा दुःख रहा। जिस दिन वे मुझे छोड़कर काशी गये, उस दिन हाथ जोड़कर मैंने देवता से भीख माँगी थी, एक दिन के लिए जैसे उनसे मेरी मुलाकात हो; ‘स्पृष्टा करके कहा था, ‘मैं यदि सती हूँ तो फिर तुमसे मुलाकात होगी।’ कहाँ, फिर तो मुलाकात नहीं हुई। आज के दिन—मरने के दिन, दीदी, एक बार यदि देख पाती। एक दिन में, दीदी, सात साल का दुःख भूल जाती।”

यामिनी ने कहा, “देखोगी?” भ्रमर बिजली की तरह कौंध उठी। पूछा, “किसकी बात कहती हो?”

यामिनी ने स्थिर होकर कहा, “गोविन्दलाल की बात, वे यहाँ हैं—पिता जी ने तुम्हारी बीमारी की खबर उन्हें दी थी। खबर पाकर वे तुम्हें एक बार देखने के लिए आये हैं, आज पहुँचे हैं। तुम्हारी हालत देखकर डर से अब तक तुमसे नहीं कह सकी—वे भी हिम्मत करके नहीं आ सके।”

भ्रमर ने रोकर कहा, “एक बार देख लूँ, दीदी, इस जीवन में एक बार देख लूँ। इस समय एक बार दिखा दो।”

* विवाहवाली रात, विवाह हो जाने पर।

यामिनी उठ गई। कुछ देर बाद धीरे-धीरे पैर रखते हुए गोविन्दलाल सात साल के बाद अपने शय्या-गृह में आये।

दोनों आदमी रो रहे थे। एक भी बोल नहीं सका। भ्रमर ने पति को पास आकर पलंग पर बैठने का इशारा किया। गोविन्दलाल आँसू बहाते हुए पलंग पर बैठे। भ्रमर ने उनसे और पास आने के लिए कहा, गोविन्दलाल और पास गये। तब, हाथ की पहुँच के अन्दर पति के पैर पाकर भ्रमर ने दोनों पैर छूकर रेणु माथे पर रख ली। कहा, “आज मेरे कुल अपराध क्षमा करके आशीर्वाद करो, दूसरे जन्म में जैसे सुखी होऊँ।”

गोविन्दलाल कोई बात नहीं कर सके। भ्रमर का हाथ अपने हाथ में ले लिया। उसी तरह हाथ में हाथ रहा। बहुत देर तक रहा। भ्रमर ने चुपचाप प्राण छोड़ दिये।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

भ्रमर का स्वर्गवास हो गया। यथारीति उसकी किया हुई। किया करके गोविन्दलाल घर आये और घर में बैठे रहे। जब से लौटे, उन्होंने किसी से बातचीत नहीं की।

फिर रात बीती। भ्रमर की मृत्यु के दूसरे दिन जैसे सूर्य रोज़ निकलता है, वैसे ही निकला। पेड़ के पत्ते धूप-छाँह से चमकने लगे। सरोवर का काला जल छोटी छोटी तरङ्गें उठाता हुआ मुलसने लगा; आकाश के काले बादल सफ़ेद हुए—भ्रमर जैसे मरी नहीं। गोविन्दलाल बाहर निकले।

गोविन्दलाल ने दो स्त्रियों को प्यार किया था—भ्रमर को और रोहिणी को। रोहिणी मरी—भ्रमर मरी। रोहिणी के रूप की ओर

आकृष्ट हुए थे—यौवन की अतृप्त रूप-तृष्णा शान्त नहीं कर सके । भ्रमर को छोड़ कर रोहिणी को पकड़ा था । रोहिणी को ग्रहण करके ही समझ गये थे कि यह रोहिणी है, भ्रमर नहीं—यह रूप की प्यास है, यह स्नेह नहीं—यह भोग है, यह सुख नहीं—यह मन्दार-वर्षण-पीड़ित वासुकि-श्वास-निर्गत हलाहल है, यह धन्वन्तरि के भाण्ड से निकला अमृत नहीं । वे समझे कि हृदय के समुद्र को लगातार मथते हुए जो हलाहल उन्होंने निकाला है, वह दूर नहीं किया जा सकता, अवश्य पीना होगा । नीलकण्ठ की तरह गोविन्दलाल ने वह विष पान किया । नीलकण्ठ के कण्ठस्थ विष की तरह वह विष उनके गले में रक्खा रहा । वह विष हضم होनेवाला नहीं—वह विष उद्गीर्ण होनेवाला नहीं, किन्तु तब वह पहले की चखी हुई भ्रमर के विशुद्ध प्रणय की सुधा नैसर्गिक गन्ध से युक्त, चित्त को पुष्ट करनेवाली, सब रोगों की ओषधि जैसी, दिन-रात स्मृति में जगने लगी । जब प्रसाद-पुर में गोविन्दलाल रोहिणी के सङ्गीत के स्रोत में बह रहे थे, तब भी भ्रमर उनके चित्त में प्रबल प्रतापवाली अधीश्वरी थी—भ्रमर अन्तर में थी, रोहिणी बाहर । तब भ्रमर न मिलनेवाली, रोहिणी न छोड़ी जा सकनेवाली थी, फिर भी भ्रमर अन्तर में थी, रोहिणी बाहर । इसी लिए रोहिणी इतना जल्द मर गई । यदि कोई यह बात न समझे, तो व्यर्थ ही यह आख्यायिका मैंने लिखी ।

यदि उस समय गोविन्दलाल, रोहिणी की यथोचित व्यवस्था करके स्नेहमयी भ्रमर के पास आकर हाथ जोड़कर खड़ा होता, कहता, “मुझे क्षमा करो, फिर मुझे हृदय के एक कोने में जगह दो”, अगर कहता, “मुझमें ऐसा गुण नहीं है, जिससे तुम मुझे क्षमा कर सको,” तो शायद भ्रमर उसे क्षमा कर देती; क्योंकि नारी क्षामयी है, दयामयी और स्नेहमयी है, —नारी ईश्वर की कीर्ति का चरम विकास है, देवता की छाया है; पुरुष देवता की केवल सृष्टि है । स्त्री प्रकाश है, पुरुष छाया । प्रकाश क्या छाया को छोड़ सकता था ?

गोविन्दलाल वैसा नहीं कर सका। कुछ अहङ्कार था, पुरुष अहङ्कार से भरा है; कुछ लाज थी, पाप करनेवाले का लाज ही दण्ड है; कुछ भय था, पाप सहज रूप से पुण्य का सामना नहीं कर सकता। भ्रमर को मुँह दिखाने का रास्ता अब नहीं रह गया। गोविन्दलाल और आगे नहीं बढ़ सका। इसके बाद गोविन्दलाल हत्यारा हुआ। तब गोविन्दलाल के आशा और भरोसा खत्म हो गये। अधेरा प्रकाश के सामने नहीं आ सका।

लेकिन फिर भी वह फिर जली हुई, न रोकी जा सकनेवाली, जला देनेवाली, भ्रमर को देखने की लालसा साल-साल, महीने-महीने, दिन-दिन, दण्ड-दण्ड, पल-पल, गोविन्दलाल को दध करने लगी। किसने ऐसा पाया था? किसने ऐसा खोया? भ्रमर ने भी दुःख पाया था, गोविन्दलाल ने भी दुःख पाया था। परन्तु गोविन्दलाल की तुलना में भ्रमर सुखी है। गोविन्दलाल का दुःख मनुष्य-देह में असह्य है। भ्रमर का सहाय था काल; गोविन्दलाल का वह भी नहीं।

फिर रात बीती—फिर सूर्य के प्रकाश से पृथ्वी हँसी। गोविन्दलाल घर से निकले। रोहिणी के गोविन्दलाल ने अपने हाथ से प्राण लिये थे—भ्रमर के भी प्रायः अपने हाथों प्राण लिये, यही सोचते सोचते बाहर निकले।

हमें नहीं मालूम कि वह रात गोविन्दलाल ने किस तरह पार की। जान पड़ता है, रात बड़ी भयानक बीती थी। दरवाजा खोलते ही माधवीनाथ से मुलाकात हुई। माधवीनाथ उन्हें देखकर मुँह की ओर देखते रहे—मुख पर मनुष्य की शक्ति से परे रहनेवालों रोग की छाया है।

माधवीनाथ उनसे बोले नहीं। मन में प्रतिज्ञा की थी कि इस जन्म में गोविन्दलाल से बातचीत नहीं करेंगे। बिना कुछ बोले माधवीनाथ चले गये।

गोविन्दलाल घर से निकल कर भ्रमर के शयन-गृह के नीचे-वाले बगीचे में गये। यामिनी ने ठीक कहा था, वहाँ अब फुलवाड़ी नहीं रही। घास-फूस का जङ्गल हो गया है। दो-एक न मरनेवाले पेड़ अधमरी हालत में हैं—परन्तु उनमें अब फूल नहीं खिलते। गोविन्दलाल बहुत देर तक उस घास के बन में घूमते रहे, काफी दिन चढ़ आया, धूप बहुत तेज हो गई—गोविन्दलाल टहलते टहलते थककर अन्त में उससे बाहर निकले।

वहाँ से, गोविन्दलाल किसी से बातचीत न करके, किसी के मुँह की ओर न देखकर, बारूणी तालाब के किनारे गये। दिन डेढ़ पहर चढ़ आया। तीव्र धूप से बारूणी की गहरी काली निर्मल जल-राशि झुलस रही थी। स्त्री-पुरुष बहुसंख्यक आदमी घाट पर नहा रहे थे—बच्चे काले पानी को स्फटिक की तरह चूर-चूर करते हुए तैर रहे थे। गोविन्दलाल को उतने आदमियों का समागम नहीं अच्छा लगा। घाट से, बारूणी के किनारे, जहाँ उनका वह बहु-पुष्प-रञ्जित नन्दन-तुल्य पुष्पोद्यान था, उस ओर गये। पहले ही देखा, रेलिङ्ग टूट गई है—लोहे के विचित्र द्वार की जगह बाँस की खपाचियों का बेंड़ा। भ्रमर ने गोविन्दलाल के लिए कुल सम्पत्ति यत्नपूर्वक बचाई थी, इस उद्यान के लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं किया गया था। एक दिन यामिनी ने इस बगीचे की बात चलाई थी। भ्रमर ने कहा था, मैं यम के घर चली—मेरा यह नन्दन-वन भी उजड़ जाय। दीदी, पृथ्वी में मेरा जो स्वर्ग था, वह और किसे दे जाऊँ ?”

गोविन्दलाल ने देखा, फाटक नहीं—रेलिङ्ग गिर गई है। पैठकर देखा, फूल के पेड़ नहीं—सिर्फ घास उगी है, जङ्गली अरई के पेड़, मदार और कुकुरमुत्ते से बगीचा भरा है। लता-मण्डप कुल टूटकर गिर गये हैं—पत्थर की मूर्तियों के दो-दो, तीन-तीन खण्ड हो गये हैं और वे ज़मीन पर लोट रहे हैं, उन पर लतायें चढ़ी हुई हैं, कोई मूर्ति टूटी हालत में खड़ी है। प्रमोदभवन की छत टूट

गई है—भिलमिल दरीचा कोई तोड़कर ले गया है। मारवर पत्थर कोई कर्श से निकाल कर ले गया है। उस बगीचे में अब फूल नहीं खिलते—फल नहीं लगते—शायद अच्छी हवा भी अब नहीं चलती।

पत्थर की एक टूटी मूर्ति के पैरों पर गोविन्दलाल बैठे। कमशः दुपहर हो आई, गोविन्दलाल वहीं बैठे रहे। प्रचण्ड सूर्य के तेज से उनका मस्तक उत्तम हो उठा; परन्तु गोविन्दलाल ने कुछ भी अनुभव नहीं किया। उनमें बड़ी बेचैनी है, रात से केवल भ्रमर और रोहिणी को सोच रहे हैं। एक बार भ्रमर, फिर रोहिणी; फिर भ्रमर, फिर रोहिणी। सोचते सोचते आँखों से भ्रमर को देखने लगे, सामने रोहिणी को देखने लगे—संसार भ्रमर-रोहिणीमय हो उठा। उस उद्यान में बैठे हुए हर पेड़ को भ्रमर देखने लगे, हर पेड़ की छाँह में रोहिणी बैठी है, देखने लगे। अभी भ्रमर खड़ी थी, अब नहीं; अभी रोहिणी आई, फिर कहाँ गई? हर शब्द में भ्रमर या रोहिणी का कण्ठ सुनने लगे। घाट में नहाने-वाले बातें कर रहे हैं, इससे कभी मालूम हुआ, भ्रमर बातें कर रही है, कभी मालूम देने लगा, रोहिणी बातें कर रही है—कभी जान पड़ने लगा, वे दोनों बातचीत कर रही हैं। सूखा पत्ता हिल रहा है—जान पड़ा, भ्रमर आ रही है। वन में वन्य कीट-पतङ्ग विचर रहे हैं—मालूम दिया, रोहिणी भग रही है। हवा से शाखा हिल रही है—मालूम हुआ, भ्रमर साँस छोड़ रही है। पपीहे की पुकार से मालूम दिया, रोहिणी गा रही है। संसार भ्रमर-रोहिणीमय हो गया।

दिन के दो पहर—ढाई पहर बीत चुके, गोविन्दलाल वहीं हैं—उसी टूटी मूर्ति के पैरों पर—उसी भ्रमर-रोहिणीमय संसार में। दिन तीन पहर, साढ़े तीन पहर बीता—बिना नहाये, बिना खाये गोविन्दलाल वहीं हैं, उसी भ्रमर-रोहिणीमय अनल-कुण्ड में।

सन्ध्या हो गई, फिर भी गोविन्दलाल उठे नहीं—उन्हें चेतना नहीं। उनके घरवालों ने तमाम दिन उन्हें न देखकर सोचा था, वे कलकत्ता चले गये हैं, इसलिए बहुत तलाश नहीं की। वहीं सन्ध्या हो गई। वन में अधेरा छा गया। आकाश में तारे निकल आये। पृथ्वी नीरव हो गई। गोविन्दलाल वहीं हैं।

अकस्मात् उस अन्धकार में, स्तब्ध एकान्त में गोविन्दलाल का उन्मादग्रस्त चित्त विषम रूप से विकृत हो गया। वे साफ साफ रोहिणी का गला सुनने लगे। रोहिणी ऊँचे स्वर से जैसे कह रही है—

“यहीं”

गोविन्दलाल को तब याद नहीं रही कि रोहिणी मर गई है। उन्होंने पूछा, “यहीं—क्या ?”

जैसे सुना, रोहिणी कह रही है—

“इसी समय।”

गोविन्दलाल कल में जैसे बोले, “यहीं, इसी समय, क्या रोहिणी ?”

मानसिक व्याधि से पीड़ित गोविन्दलाल ने सुना, फिर रोहिणी ने जवाब दिया—

“यहीं, इसी समय, उस पानी में, मैं डूबी थी।”

गोविन्दलाल ने अपने मानस से निकली यह वाणी सुनकर पूछा—“मैं डूबूँ ?”

फिर व्याधिजनित उत्तर सुना, “हाँ, आओ। अमर स्वर्ग में बैठी हुई कह भेज रही है कि अपने पुण्यबल से हमारा उद्धार करेगी।”

“प्रायश्चित्त करो ! मरो !”

गोविन्दलाल ने आँखें मूँद लीं। उनका शरीर अवसन्न हो गया, काँपने लगा। वे मूर्च्छित होकर सोपान की शिला पर गिर गये।

मोह की अवस्था में मानस-नेत्रों से देखा, एकाएक रोहिणी-मूर्ति
 आँधरे में लीन हो गई। तब क्रमशः दिगन्त को प्रभासित करके
 ज्योतिर्मयी अमर-मूर्ति सामने उदित हुई।

अमर-मूर्ति ने कहा, “मरोगे क्यों, मरो नहीं। मुझे खो चुके हो,
 इसलिए मरोगे? मुझसे भी प्रिय कोई हैं! बचने पर उन्हें
 पाओगे।”

गोविन्दलाल उस रात को मूर्च्छित अवस्था में वहीं पड़े रहे।
 प्रभात के समय पता पाकर उनके घर के लोग उठाकर उन्हें घर ले
 गये। उनकी बुरी हालत देखकर माधवीनाथ को दया लगी; सबने
 मिलकर उनकी चिकित्सा कराई। दो-तीन महीने में गोविन्दलाल
 प्रकृतिस्थ हुए। सब लोग प्रत्याशा करने लगे कि वे अब घर में रहेंगे।
 परन्तु गोविन्दलाल ने वैसा नहीं किया। एक रात वे किसी से कुछ
 न कह कर कहीं चले गये। और किसी को उनका कोई संवाद नहीं
 मिला।

सात साल के बाद उनका श्राद्ध हुआ।

परिशिष्ट

गोविन्दलाल की सम्पत्ति उनके भानजे शचीकान्त को मिली । शचीकान्त अब बालिग है ।

शचीकान्त रोज उस श्रीहीन वन में—जहाँ पहले गोविन्दलाल का प्रमोदोद्यान था—अब घना जङ्गल है—वहाँ टहलने जाता था ।

वह दुःखमयी कथा उसने सविस्तर सुनी थी । रोज वहाँ टहलने जाता था और वहाँ बैठकर वह बात सोचता था । सोचते सोचते फिर वहाँ उद्यान बनाना शुरू किया । फिर विचित्र रेलिङ्ग तैयार कराई—तालाब में उतरने के लिए मनोहर काले पत्थर की सीढ़ियाँ बनवाई । फिर क्यारियों में सुन्दर वृक्षों की श्रेणियाँ बैठाई । परन्तु रङ्गीन फूलों के पौधे नहीं लगवाये । देशी पेड़ों में बकुल, कामिनी, विदेशी पेड़ों में साइप्रेस और यूलो । प्रमोद-भवन की जगह एक मन्दिर बनवाया । मन्दिर में किसी देव-देवी की स्थापना नहीं की । बहुत अर्थ-व्यय करके भ्रमर की एक प्रतिमूर्ति सोने की बनवाकर उस मन्दिर में स्थापित की । स्वर्णप्रतिमा के पैरों में ये अक्षर खुदवाये—

“जो सुख में, दुःख में, दोष में, गुण में भ्रमर के बराबर होगी, उसे मैं यह सोने की प्रतिमा दान करूँगा ।”

भ्रमर की मृत्यु के बारह साल बाद उस मन्दिर के द्वार पर एक संन्यासी आकर उपस्थित हुआ । शचीकान्त वहीं थे । संन्यासी ने उनसे कहा, “इस मन्दिर में क्या है, देखूँगा ।”

शचीकान्त ने द्वार खोलकर सुवर्णमयी भ्रमर-मूर्ति दिखाई । संन्यासी ने कहा, “यह भ्रमर मेरी थी । मैं गोविन्दलाल राय हूँ ।”

शचीकान्त विस्मित और स्तम्भित हुए। उनकी ज़बान रुक गई। परन्तु बाद को विस्मय दूर हुआ, उन्होंने गोविन्दलाल की पदधूलि ग्रहण की। फिर उन्हें घर में लेने के लिए प्रयत्न किया। गोविन्दलाल ने स्वीकार नहीं किया। कहा, “आज मेरा बारह साल का अज्ञात-वास पूरा हुआ। अज्ञातवास पूरा करके तुम लोगों को आशीर्वाद करने के लिए यहाँ आया हूँ। इस समय तुम्हें आशीर्वाद दे चुका, अब लौट जाऊँगा।”

शचीकान्त ने हाथ जोड़कर कहा, “सम्पत्ति मेरी है, आप भोग कीजिए।”

गोविन्दलाल ने कहा, “विषय-सम्पत्ति से भी जो धन बढ़कर है, जो कुबेर के लिए भी अप्राप्य है, वह मुझे मिला है। इस भ्रमर की अपेक्षा भी जो मधुर है, भ्रमर की अपेक्षा भी जो पवित्र है, वह मुझे मिला है। मुझे शान्ति मिली है। सम्पत्ति की मुझे आवश्यकता नहीं; तुम्हीं उसका भोग करते रहो।”

शचीकान्त ने विनीतभाव से पूछा, “क्या संन्यास से शान्ति मिलती है?”

गोविन्दलाल ने जवाब दिया, “कदापि नहीं। केवल अज्ञात-वास के लिए मेरा संन्यासी का परिच्छेद है। भगवत-पाद-पद्मों में मनःस्थापन के सिवा शान्ति पाने का दूसरा उपाय नहीं। वही अब मेरी सम्पत्ति—मेरी भ्रमर—भ्रमर से भी अधिक भ्रमर है।

यह कहकर गोविन्दलाल चले गये। फिर किसी ने उन्हें हरिद्वार ग्राम में नहीं देखा।

